हमलोग पृथ्वी के अधिवासी हैं, इससे अन्यान्य लोक के विषयों को त्यागकर प्रथम भूलोक के विषय में विवेचना करना ही युक्ति श्रोर न्याय संगत प्रतीत होता है।

हमलोगों की पृथ्वी भी सैार जगत के अन्तर्गत है। सूर्य्यमण्डल को बीच में रखके जो कई एक छोटे बड़े ग्रह बहुत दिनों से अकारण घूम रहे हैं, पृथ्वी भी उनमें से एक है। सूर्य्यमण्डल की प्रबल आकर्षणिक शक्ति के कारण जितने ग्रह सूर्य्यमण्डल को घेर कर घूम रहे हैं, वे आपस की खींचा खींची के कारण कोई भी अपने एक नियमित पथ के अनुगामी होकर नहीं चल सकते। इसीसे पृथ्वी भी एक नियमित मार्ग से नहीं चल सकती, वरन् सूर्य्य के आकर्षण के कारण सदा ही नियमित पथ से कुछ न कुछ मार्गभ्रष्ट हो जाया करती है। इससे यह प्रश्न हो सकता है कि इस निर्द्दिष्ट मार्ग-भ्रंश वा कक्षच्युति हो जाने से क्या कभी ऐसे समय का भी आजाना सम्भव है, कि जब दो ग्रह अकस्मात् एकही समय में एक स्थान में उपस्थित हो कर परस्पर के प्रतिघातों से नष्ट हो जांय?

इस प्रश्न का उत्तर देना कोई साधारण बात नहीं है। वैज्ञानिक निउटन ने दो पदार्थों में आपस का आकर्षण का रहना एक साधारण नियम माना है श्रोर उसका निश्चय करके भविष्यत् में होनेवाले वैज्ञानिकों पर एक बड़ा बोझा रख दिया है। यदि जगत में दोही पदार्थ होते तब यह सहज ही में निश्चय हो जाता श्रोर उसके निश्चय करने में बहुत सा कष्ट नहीं सहना पड़ता। किन्तु खेद है कि जगत में खण्ड पदार्थ दो से बहुत ही अधिक हैं। निउटन के नियमानुकूल तीन पदार्थ परस्पर के आकर्षण से कैान कब कहां रहेगा, इसके निश्चय करने में गणितज्ञों के प्राण होठों पर आजाते हैं; श्रोर तब गणितज्ञों को चार पदार्थ लेकर उपर्युक्त महाशय के मत से सिद्ध करना बडाही कठिन श्रोर दुष्कर हो जाता है। वास्तव में यह विषय भी बहुत ही कठिन है, तथापि माहत्मा लापलस इसके निश्चय करने में बहुत कुछ कृतकार्य्य हुए हैं, इन्होंने निश्चय किया है, कि परस्पर के आकर्षणों से ग्रहण का चिरस्थायी कक्षच्युत होना कदापि सम्भव नहीं है। सूत्रलम्बित पेण्डुलम वा परिदोलक जैसे अपने स्थान से एकाएक अलग नहीं होता, केवल उसी स्थान को लक्ष्य करके जरा इधर उधर हट बढ़ जाता है, वैसे ही प्रत्येक ग्रह अपने साथियों के आकर्षण से कुछ अपने मार्ग से हट बढ़ जाता है, परन्तु पुनः घूम फिरके अपने निर्द्दिष्ट पथ पर ही परिक्रमा करते हैं, कि जिससे यह आशंका की जाय कि किसी ग्रहविशेष का सदा के लिये मार्ग परिवर्त्तन हो जायगा। इन सबकी आलोचना करने से सिद्ध होता है, कि सैारजगत में परस्पर ग्रहों के टक्कर से महाप्रलय के होने की कोई सम्भावना नहीं दिखाई देती।

महामनस्वी लापलस की इस सिद्धान्त की हुई युक्ति के भीतर आज तक किसी गणितज्ञ ने किसी प्रकार की भूल नहीं निकाली, यहां तक कि केम्ब्रिज कालेज के प्रसिद्ध अध्यक्ष हुवेलस साहब ने लापलस के निश्चय किए हुए सिद्धान्त पर श्रद्धा के साथ कहा है कि देखो विधाता का कैसा अपूर्व कैाशल है, कि सैारजगत के समान ऐसे जटिलयन्त्र में भी ऐसी सुनियत सुश्रृंखला है, कि जिससे इससे इसके नाश अथवा महाप्रलय होने की कोई सम्भावना नहीं है। हे मनुष्यो! ईश्वर को धन्यवाद दो, कि उसने अपनी सृष्टि को ऐसे सुन्दर नियमों के अभ्यन्तर बांध रक्खा है, कि जिससे जगत् का कभी लोप नहीं होसकता।

महात्मा लापलस के उपर्युक्त सिद्धान्त में किसी प्रकार का प्रमाद नहीं दिखाई देता, किन्तु एक श्रोर उपद्रव की सम्भावना से वैज्ञानिक मंडली में एक प्रकार का पुनः असमंजस होगया है, अर्थात् सुन्दर सुनियमित सैारजगत में न जाने कहां से कभी कभी बड़े बड़े पूंछवाले धुमकेतु

नामक पदार्थ चले आते हैं, कि जिनको देखकर वैज्ञानिकों से लेकर साधारण व्यक्ति तक के हृदय में भय का सञ्चार हो आता है। धूमकेतु के उदय होने पर महामारी वा राष्ट्रविप्लव के डर से वैज्ञानिक लोग पूजा पाठ करना आवश्यक नहीं समझते, तथापि उनकी स्थिति, विस्तृति, आकार तथा अवयव ऐसे अपूर्व रहस्य से भरे हुए होते हैं, कि जिन्हें देखकर बिना सशंकित हुए नहीं रह सकते। अन्यान्य पदार्थों के समान धूमकेतु में भी माध्याकर्षण शक्ति रहती है। किन्तु यह धूमकेतु कहां रहता है, और किस प्रकार आ जाता है इसका कुछ भी भेद नहीं विदित होता। तथापि इसके एकाएक अज्ञात स्थान से आकर माध्याकर्षण के बल से पृथिवी से अकस्मात् टकरा जाने के भय की तर्कना करने का अवसर न रहते भी अवसर होजाता है। आज कल इस आशङ्का की बहुत कुछ निराकृति हो भी गई है, परन्तु धूमकेतु का स्वरूप और बड़ाई जैसी भयानक है, वैसा इसका स्वभाव भयानक नहीं है। अर्थात् पृथिवी से दसगुना बड़ा रहने पर भी गुरुत्व में यह पृथिवी के दस छटाक के भी समान नहीं होता। यह पृथिवी ऐसी है, कि दस हजार सूर्य्य के समान यदि धूमकेतु की बड़ाई होजाय तब भी इसके धक्के से पृथिवी को किसी प्रकार की हानि भी नहीं पहुंचा सकता। ऐसा भी सुनने में आया है, कि आज तक हमलोगों के अज्ञान में दो एक धूमकेतुओं के भीतर से पृथिवी जाचुकी है, जिसमें केवल उल्कावृष्टि के अतिरिक्त और किसी प्रकार का उपद्रव नहीं दिखाई दिया था। कितने लोग यह भी सन्देह करते हैं, कि यह धूमकेतु केवल उल्कापिण्ड का समूह मात्र है। एक समय एक धूमकेतु बृहस्पति के समीप चला गया था जिससे बृहस्पति की कुछ भी हानि नहीं हुई, वरन् धूमकेतु का ही गन्तव्यपथ विचलित हो गया था।

सम्भव है, कि जितने प्रकार के धूमकेतु आज तक हम लोगों के दृष्टिगोचर होचुके हैं, उन में से कोई भी हमारी पृथिवी को हानि पहुंचाने में समर्थ न हुआ हो। किन्तु इसपर यह प्रश्न हो सकता है, कि यदि ऐसाही कोई पदार्थ सौर जगत के बाहर से आकर हमारी पृथिवी को क्या नष्ट नहीं कर सकता? परन्तु आज लों इस प्रश्न के अनुकूल और प्रतिकूल कोई प्रमाण नहीं मिला है। लापलस की गणना सौर जगत के अभ्यन्तर ही माननीय है, क्योंकि बाहरी अर्थात् धूमकेतु इत्यादि पदार्थों पर, जोकि समय समय पर प्रगट हो जाते हैं, उन्होंने कोई गणना नहीं की है; यदि वे करते भी तो वह कदापि माननीय न होसकती। बाहरी कौन पदार्थ कब आकर अकस्मात् महाप्रलय का करने वाला होगा यह निश्चय नहीं कहा जासकता। नक्षत्रलोक के इसी प्रकार के आकस्मिक महाअभ्यन्तर प्रलय होने के भी दो एक उदाहरण मिलते हैं। थोड़े दिन हुए कि हुगिन्स साहब ने एक नक्षत्र को एकाएक जलते हुए देखा। उस नक्षत्र को एक बड़े दूरवीक्षण यंत्र की सहायता द्वारा देखने से विदित हुआ कि इसके एकाएक जलने का प्रधान कारण हाइड्रोजन अर्थात् उदजान वाष्प है। हाइड्रोजन जलने के अन्त में अवश्य पानी हो जाता है। एक बोतल में हाइड्रोजन भर कर उसे बालने से इतनी उसमें गरमी उत्पन्न हो जाती है कि उस (बोतल) के छोटे से मुंह पर लोहे की चद्दर भी काग़ज़ के समान जलने लगती है। सुदूरस्थ एक नक्षत्र में हाइड्रोजन नामक वाष्प का जल उठना कोई साधारण बात नहीं है। पृथिवी की ऐतिहासिक घटना भी इसी प्रकार की है। हमलोगों की वर्त्तमान वायु में उपर्युक्त वाष्प ऐसी थोड़ी रहगई है, कि जिसे यह भी कह सकते हैं कि वह (हाइड्रोजन) अब शेष नहीं रहगई है। किन्तु किसी समय में यही हाइड्रोजन हमलोगों की वायु में यथेष्ट वर्त्तमान थी, जिससे यह ज्ञात होता है, कि अवश्य यह किसी समय में जलगई है और तभी से समुद्र की उत्पत्ति भी हुई है। इस समय जो बचा हुआ उदजान वाष्प है, न तो उसके जलने

को ही आशा है और न वह जलता है। उदजान वाष्प के अतिरिक्त और भी कोई ऐसे पदार्थ इतनी विशेषता से नहीं दिखाई देते हैं, कि जो भविष्यत् में एकाएक जल कर महाप्रलय करदें। दहनादि रासायनिक क्रिया भूमण्डल के अभ्यन्तर नहीं हो रही है, ऐसा नहीं है, वरन् उसका कार्य्य ऐसे धीरे धीरे हो रहा है, कि जिससे विशेष डर नहीं है, तथापि भूकम्प के रूप में वा ज्वालामुखी इत्यादि का आविर्भाव होकर समय समय पर भूमण्डल के किसी किसी भाग में उत्पात हो जाया करते हैं। किन्तु ऐसे उपद्रवों से यह नहीं कहा जा सकता कि ये अन्त में महाप्रलय के करनेवाले होंगे। हुगिन्स ने जिस नक्षत्र को जलते हुए देखा था, वैसी घटनाएं और भी कई एक बार देखने में आचुकी हैं। इसी प्रकार एक दिन उत्तर आकाश की ओर "गारेमा" नामक नक्षत्रपुञ्ज के समीप एक नक्षत्र, जो पहिले कभी नहीं देखा गया था वह, बहुत दिनों तक प्रकाश के साथ जलता हुआ दिखाई दिया था। इस आकस्मिक प्रकाश के होने का कारण निश्चित हुआ था वा नहीं यह मैं नहीं कह सकता, पर सभी नक्षत्र किसी अन्तरीय कारण से ही जल उठते हों, ऐसा नहीं। अस्तु, जिस नक्षत्र में अग्नि लग जाने का वृत्तान्त लिखा है, उसके विषय में ऐसा भी लोग कहते हैं, कि केवल दो उल्कासमूह के संघर्षण से उसमें अग्नि लगी थी। बाहर के आघात अथवा नक्षत्र के संघर्षण से भी अग्नि लगजाना कोई असम्भव नहीं है।

और भी कई प्रकार के लोग प्रश्न करते हैं तथा कहते हैं, कि क्या पृथिवी अपने भीतर की शक्ति से कभी एकाएक फट कर सौ टुकड़े हो सकती है? क्या आज भी भूमण्डल के अभ्यन्तर तरल पदार्थ बड़े भयङ्कर रूप से तप रहे हैं? और यही आज तक बहुत से लोग विश्वास भी किए हुए थे कि आज तक इस पृथिवी के अभ्यन्तर पूर्ववत् द्रव अवस्था ही में वर्त्तमान है। किन्तु लार्ड केलविन ने प्राकृतिक नियमों द्वारा निश्चय किया है कि चाहे पृथिवी कितनी ही तप्त अवस्था में हो जाय, इससे भूमण्डल के अधिवासियों को कोई हानि नहीं पहुंच सकती, क्योंकि भूपृष्ठ का ऊपरी दबाव इतना अधिक है कि जिससे पृथिवी का भीतरी भाग द्रव अवस्था में कदापि नहीं रह सकता। और यह भी सिद्ध है कि अब इस (पृथिवी) की पहिले के समान द्रव अवस्था नहीं है, क्योंकि इसके और भी कई एक प्रमाण मिलते हैं। समुद्र में सूर्य्य और चन्द्र की आकर्षणिक शक्ति से जैसे ज्वार भाटा सदा आया करता है, वैसेही पृथिवी के द्रवस्थान में भी आन्दोलन होता रहता और वह भूपृष्ठ के रहनेवालों के लिये कदापि सन्तोषजनक न होता। इन्हीं सब कारणों से पण्डितवर केलविन साहब अनुमान करते हैं, कि पृथिवी अन्दर से अवश्य इस्पात के समान कड़ी होगई है।

पृथिवी का पृष्ठभाग भी किसी समय में अवश्य तरल अवस्था में था, इसमें सन्देह नहीं। इसपर लोग यह भी प्रश्न कर सकते हैं, कि यह पृथिवी तरल अवस्था को त्यागकर कठिन अवस्था में कब से आई है? इस प्रश्न का उत्तर जो वैज्ञानिकों ने दिया है उसके अतिरिक्त और कोई ऐसे प्रमाणों के न रहते भी वे प्रमाण ऐसे सुनियमित हैं, कि जिनपर कोई अविश्वास का कारण नहीं हो सकता। जैसे पृथिवी के ऊपर का भाग क्रमशः ठण्डा और कठोर उन्नतावनत व नीचा ऊंचा मिलता है, तथा कहीं कहीं पृथिवी का भाग फटा हुआ मिलता है, कि जिसमें से कभी कभी भू-गर्भस्थ तरल पदार्थ निकल कर बहुत ही हानि पहुंचाते हैं और इसीको हम लोग ज्वालामुखी कहते हैं। १८८२ ई० में क्रकटायर नामक स्थान में जो अग्न्युत्पात हुआ था, कि जिसमें से अनेकानेक पदार्थ भूगर्भ में से निकल कर नभोमण्डल में निक्षिप्त हुए थे, जो वैज्ञानिकों के मत से आज भी वायुराशि में वर्त्तमान है। वैज्ञानिकों ने यह भी हिसाब करके देखा है, कि जो पदार्थ एक सेकण्ड में आठ मील वेग के साथ ऊपर चला जाय वह पुनः पृथिवी पर नहीं आता। इससे यह

भी अनुमित होता है, कि जिस समय यह पृथिवी बहुत तरल अवस्था में थी, उस समय अग्न्युत्पात भी विशेषता के साथ हुआ करते थे। सम्भव है कि उस समय पृथिवी का कोई अंश वेग में आठ मील जाकर इस पृथिवीतल से सदा के लिये बिछुड़ गया हो। सर रवार्ट नेल साहब के मत से ऐसे उपद्रवों से अनेक उल्कापिण्ड उत्पन्न होते हैं। जो कुछ हो, इस समय पृथिवी की जैसी अवस्था भीतर वर्त्तमान है, उससे क्राकटायर ऐसे छोटे छोटे देश में प्रलय होना सम्भव है, किन्तु इससे महाप्रलय को आशङ्का नहीं की जासकती। और ऐसा भी सम्भव नहीं है कि एक बड़े ज्वालामुखी के निकलने से पृथिवी के एक वा दो सहस्र टुकड़े हो जायंगे।

लापलस ग्रहण के कक्षच्युति होने की गणना करने में एक कारण छोड़ गए है, कि जिसके विषय में लार्ड केलविन ने स्वयं और इनके पथानुवर्त्ती जर्ज डारविन ने कई एक कारण दिखाए हैं।

इनका कथन है, कि चन्द्रमण्डल समुद्र की जलराशि को नित्य प्रति पृथिवी के दैनिक आवर्त्तन के प्रतिकूल खींचता जाता है, जिसका फल यह है कि पृथिवी के आवर्त्तन का वेग क्रमशः कम होता जाता है और चन्द्रमा का दूरत्व भी बढ़ता जाता है। ऐसा भी एक दिन था, कि चन्द्रमण्डल हमलोगों के बहुत ही समीप था और अब एक ऐसा समय भी आवेगा की चन्द्रमण्डल और भी दूर चला जायगा। आज कल चौबीस घण्टे में पृथिवी एक बार घूमती है और तब ग्यारह सैा वा बारह सैा घण्टे में एक बार घूमेगी। अभी केवल छोटे दिनों के तीन सैा पैंसठ दिनों में एक वर्ष होता है और उस समय में बड़े दिनों के सात वा आठ दिन का एक वर्ष होगा। यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता है कि उस समय तक मनुष्य जाति रहेगी वा नहीं, किन्तु जो कारण लार्ड केलविन ने दिखाया है उससे उपर्युक्त समय के आने में शंका भी नहीं की जा सकती।

जिन कारणों से चन्द्र पृथिवी से दूर हुआ जाता है, ठीक उन्हीं कारणों से पृथिवी भी सूर्य्य से दूर होती जाती है। पृथिवी के कक्षच्युति होने का यही एक बड़ा पुष्ट प्रमाण है। इस घटना के अनन्तर भविष्यत् में क्या होगा इसका निश्चय करना व्यर्थ है।

और प्रकार से भी वैज्ञानिक लोग कहा करते हैं कि आकाश के शून्य न होने में तो किसी प्रकार का सन्देह है ही नहीं, क्योंकि आलोकवाही और तड़िततरङ्गवाही ईथर नामक पदार्थ सम्पूर्ण आकाश में व्याप रहा है, कि जिसे पृथिवी ढकेल कर अपने मार्ग में घूमती है। जल किम्वा वायु पदार्थ के चलने से रोकता है। ईथर अति सूक्ष्म और लघु पदार्थ होने पर क्या पृथिवी को किसी प्रकार की बाधा न देता होगा? ईथर में प्रातिघातिक क्षमता है वा नहीं इसके निश्चय करने के लिये टेट साहब ने बहुत परिश्रम किया, किन्तु उनके मनोगत विषय का कुछ भी प्रमाण नहीं मिला। एकिन साहब के आविष्कृत धूमकेतु की कक्षच्युति ईथर के प्रतिघातोंही से हुई हो, ऐसा नहीं। उस धूमकेतु के कक्षच्युति होने के और भी कारण हो सकते हैं। आज कल कई एक विद्वान् लोग जड़पदार्थ के साथ ईथर का सम्बन्ध निर्णय कर रहे हैं, भविष्यत् में जिसके अनुसन्धान से क्या निश्चय होगा, यह नहीं कहा जा सकता।

लार्ड केलविन प्रधान तत्व के आविष्कार करने वाले हुए हैं जिसे हम लोग जागतिक शक्ति की क्षति कह सकते हैं। शक्ति सदा से अनेकानेक रूप में विद्यमान रहती है और शक्तिमात्र अपनेही से सर्वत्र तम अवस्था में रहती है। कभी ऐसा भी समय आवेगा कि जब सारी शक्तियां बुझ कर जगत् के सम्पूर्ण यन्त्रों का चलना बन्द कर देंगी; ग्रह उपग्रह सभी गतिहीन होकर सूर्य्य में मिल जांयगे; ब्रह्माण्ड गतिहीन होकर, चाहे तम अवस्था में, चाहे ठंढी होकर, कई एक महापिण्ड का रूप धारण कर लेंगी। इस परिणाम का कोई हटानेवाला उपाय नहीं दिखाई देता और इसी

होनेवाले भयङ्कर समय को ही महाप्रलय होने का अनुमान कर सकते हैं। हर्वर्ट स्पेन्सर का कथन है, कि इस प्रकार के महाप्रलय होने के पीछे पुनः नवीन सृष्टि का आरम्भ होगा। किन्तु इन्होंने इसके उत्पन्न होने का (पुनः सृष्टि का) कोई उचित उत्तर नहीं दिया है, कि जिससे यह विश्वास किया जाय कि सृष्टि का पुनः आविर्भाव होगा।

हेल महोलतज़ ने वर्त्तमान सृष्टि के नाश वा प्रलय होने का बहुत अच्छा अनुसन्धान किया है, अर्थात् सूर्य्यमण्डल बहुत विषेशता के साथ अपनी किरणों द्वारा जीवमात्र को जो कुछ लाभ पहुंचा रहा है वह किसीसे छिपा नहीं है। हम लोगों की गति, विधि, स्थिति इत्यादि सब कार्य सूर्य्यमण्डल की कृपा ही से चल रहे हैं; यदि आज इस (सूर्य्य) में ज्योति न रहे तो आजही महाप्रलय के होने में सन्देह नहीं। अस्तु सूर्य्यमण्डल से जो कुछ हम लोगों को प्रकाश मिल रहा है, उतना ही सूर्य्य का तेज क्षीण होता जाता है। प्रकाश के नित्य प्रति क्षीण होने से एक वर्ष में सूर्य्यमण्डल की परिधि प्रायः अस्सी हाथ कम होती जाती है। इस प्रकार के नित्यप्रति घटते रहने पर भी अभी बीस हज़ार वर्ष पर्य्यन्त ऐसी आशंका नहीं की जा सकती कि जिससे जीव को क्षति हो; किन्तु पचास लाख वर्ष पीछे सूर्य्य का आकार वर्त्तमान आकार और प्रभा का आठवां भाग वा दो आना रह जायगा। फिर कोई ऐसा अभागा दिन आवेगा कि सूर्य्य बिलकुल ज्योतिर्रहित हो जायगा। वैज्ञानिकों ने गगनमण्डल में यह भी अनुसन्धान किया है कि वर्त्तमान सूर्य्य के सदृश और भी दो एक सूर्य्य हैं। हमलोगों के वर्त्तमान सूर्य्य के नाश होने में कोई सन्देह नहीं, किन्तु पृथिवी इसके प्रथम ही जीव-शून्य हो जायगी इसमें भी सन्देह नहीं।

आज तक जो कुछ प्रलय के विषय में विज्ञान की उक्ति थी वह पाठकों के सम्मुख उपस्थित है और यदि अवकाश हुआ तो प्रलय के विषय में अपने प्राचीनतम शास्त्रों का क्या मत है इसका उल्लेख करूंगा। पचास वर्ष पहिले जिस विषय को डाक्टर हुवेलस् प्रभृति वैज्ञानिकों ने कहा था कि प्रलय नहीं होगा, और उसी विषय को पचास वर्ष पीछे वैज्ञानिकमण्डली एक प्रकार से कहने लग गई है कि महाप्रलय नहीं होगा, ऐसी आशा कभी नहीं की जा सकती।

नायिका-भेद

औपन्यासिक पुस्तकों के लिये केवल काशी ही और तान्त्रिक पुस्तकों के लिये केवल मुरादाबाद ही, इस समय, प्रसिद्ध हो रहे हैं; परन्तु नायिकाभेद और नखसिख वर्णन के लिये यह देशका देश ही, किसी समय, प्रसिद्ध था। देश से हमारा अभिप्राय उन प्रान्तों से है जहां हिन्दी बोली जाती है और जहां हिन्दी ही में कवियों की कविता-स्फुर्ति का प्रकाश होता है। राजाश्रय मिलने की देरी, राजा जी को सब प्रकार की नायिकाओं के रसास्वादन का आनन्द चखाने के लिये कवि जी को देरी नहीं। १० वर्ष की अज्ञात-यौवना से लेकर ५० वर्ष की प्रौढ़ा तक के सूक्ष्म से सूक्ष्म भेद बतलाकर और उनके हाव, भाव, विलासादि की सारी दिनचर्या वर्णन करके ही कविजन सन्तोष नहीं करते थे। व्यभिचार में सुकरता होने के लिये दूती कैसी होनी चाहिए; मालिन, नाइन, धोबिन इत्यादि में से इस काम के लिये कौन सबसे अधिक प्रवीण होती है; इन बातों का भी वे निर्णय करते थे। नायक के सहायक विट और चेटक आदि का भी वर्णन करने से वे नहीं चूकते थे। इस प्रकार की पुस्तकों अथवा कविताओं का बनना अभी बन्द नहीं हुआ, वे बराबर बनती जाती हैं। तथापि पहिले बहुत बनती थीं, इसी लिये हमने भूतकाल का प्रयोग किया है।

२। सब नायिकाओं में नवोढ़ा अधिक सुखद होने के कारण किसीने, अभी कुछही वर्ष हुए, एक

"नवोढ़ादर्श" नाम की पुस्तक अकेले नवोढ़ा ही नायिका की महिमासे आद्योपान्त भर कर प्रकाशित की है। समस्यापूर्ति करनेवाले कविसमाजों और कवि-मण्डलों का तो नायिकाभेद जीवनसर्वस्व हो रहा है। सुनते हैं "सुकवि-सरोज-विकास" में भी नायिकाभेद ही है। नवोढ़ा और विश्रब्ध-नवोढ़ाओं ही की कृपा से हमारी भाषा की कविता-लता सूखने नहीं पाई; कविजन अब तक उसे अपने काव्यरस से बराबर सींच रहे हैं और मुग्धमति युवक उसकी शीतल छाया में शयन करके विषयाकृष्ट हो रहे हैं।

३। इस निबन्ध का नाम "नायिकाभेद" पढ़कर नायिकाभेद के भक्तों को यदि यह आशा हुई हो कि इसमें नवोढ़ा के सुरतान्त और प्रौढ़ा के पुरुषायित सम्बन्ध में कोई नवीन उक्ति उन्हें सुनने को मिलैगी तो उनको अवश्य हताश होना पड़ैगा। परन्तु हताश क्यों होना पड़ैगा? आज तक नायिकाओं का क्या कम वर्णन हुआ है? इस विषय में, हिन्दीसाहित्य में, जो कुछ विद्यमान है उससे भी यदि उनकी काव्यरस पीने की पिपासा न शान्त हो तो हम यही कहैंगे कि उनके उदर में बड़वानल ने निवास किया है।

४। ऋषियों के बनाए संस्कृत-ग्रन्थों तक में नायिकाओं के भेद कहे गए हैं, परन्तु पद्माकर और मतिराम आदि के ग्रन्थों का सा विस्तृत विभाग वहां नहीं है। नायिकाओं की भेदभक्ति हमारे यहां बहुत प्राचीनकाल से चली आई है। कालिदास के काव्यों में भी नायिकाओं के नाम पाए जाते हैं–

निद्रावशेन भवताप्यनवेक्षमाणा
पर्य्युत्सुकत्वमबला निशि खण्डितेव।
लक्ष्मीर्विनोदयति येन दिगन्तलम्बी
सोऽपि त्वदाननरुचिं विजहाति चन्द्रः॥
रघुवंश, ५म सर्ग।

यहां खण्डिता नायिका का नाम आया है। संस्कृत में ऐसी अनेक पुस्तकें हैं जिनमें नायिकाओं की विभाग-परम्परा और उनके लक्षणों का विवरण है। तथापि भाषा पुस्तकों की सी प्रचुरता संस्कृत में नहीं है। दशरूपक और साहित्यदर्पण इत्यादि में प्रसङ्गवश इस विषय का विचार हुआ है, परन्तु वह विचार गौण है, मुख्य नहीं। जिसमें केवल नायिकाओं ही का वर्णन हो, ऐसी पुस्तक संस्कृत में एक "रसमञ्जरी" ही हमारे देखने में आई है। मिथिला के रहनेवाले पण्डित् भानुदत्त ने इसे बनाया है। भानुदत्त के अनुसार नायिकाओं के ११५२ भेद हो सकते हैं। इस पुस्तक में इन्होंने नायिकाओं का यद्यपि बहुत विस्तृत वर्णन किया है, तथापि इनका वर्णन संस्कृत में होने के कारण इतना उद्वेगजनक और हानिकारक नहीं है जितना सुरतारम्भ, सुरतान्त और "विपरीत" में विलग्न होनेवाले हमारे भाषाकवियों का है। इस विषय में भाषा की पुस्तकों का प्राचुर्य देखकर यही कहना पड़ता है कि, इस महा-अनुपयोगी और महा-सत्यानाशी नायिकाभेद में संस्कृत कवियों की अपेक्षा भाषा के कवियों और भाषा की कविता के प्रेमियों की सविशेष रुचि रहती आई है। नगरों की बात जाने दीजिए, छोटे छोटे ग्रामों तक में, साठ साठ वर्ष के खूसट बुड्ढों को भी नायिकाभेद की चर्चा करते और ज्ञात-यौवना और अज्ञात-यौवना के अन्तर के तारतम्य पर वक्तृता देते हमने अपनी आंखों देखा है!

५। निश्चयात्मकता से हम यह नहीं कह सकते कि नायिकाभेद की उत्पत्ति कब से हुई और क्यों हुई? वात्स्यायन मुनिकृत "कामसूत्र" बहुत प्राचीन ग्रन्थ है। इसमें नायक और नायिकाओं के सामान्य भेद कहे गए हैं। ये भेद वैसे ही हैं जैसे इस प्रकार की पुस्तकों में हुआ करते हैं। वह आडम्बर और वह अश्लीलत्व जो आजकल के नायिकाभेद में पाए जाते हैं, वहां बिलकुल नहीं हैं। जान पड़ता है, इसी प्रकार के ग्रन्थ नायिकाभेद की उत्पत्ति के कारण हैं। सम्भवतः इन्हींको देख कर नायिकाओं के पक्षपातियों ने इसे पृथक् विषय निश्चित करके पृथक् पृथक् अनेक ग्रन्थ रच डाले और सैकड़ों, नहीं

हज़ारों, भेद उत्पन्न करके सब रसों के राजा का राज्यविस्तार बहुत ही विशेष बढ़ा दिया। नायिकाएं ही शृङ्गाररस की अवलम्बन हैं, और शृङ्गार रस ही सब रसों का राजा है। राजा का जीवन ही जब इन नायिकाओं पर अवलम्बित है तब कहिए क्यों भाषासाहित्य में इनकी इतनी प्रतिष्ठा न हो? इनकी कीर्ति का कीर्तन करके क्यों कविजन अपनी वाणी को सफल न करें? और इन्हीं की बदौलत नानाप्रकार के पुरस्कार पाकर क्यों न वे अपने को कृतकृत्य मानें?

६। कृष्ण, राधा, गोपिका, वृन्दावन, यमुना, कुञ्जकुटीर आदि ने नायिकाभेद के वर्णन में विशेष सहायता पहुंचाई है; परन्तु यदि कोई यह कहे कि, यह भेद-वर्णन राधा-कृष्ण के उपासना-तत्व से सम्बन्ध रखता है तो उसका कथन कदापि मान्य नहीं हो सकता। नायिकाओं में "सामान्या" एक ऐसा भेद है जिससे कृष्ण का कोई सम्पर्क नहीं, और नायिकाभेद के आचार्यों ने कृष्ण की नायिकाओं के भेद नहीं किए, किन्तु सामान्यरीति से नायिकामात्र की भेद-परम्परा बतलाई है। अतएव कृष्ण के उपासकों के लिये इस विषय से कृष्ण का सम्बन्ध न बतलाना ही अच्छा है।

७। जहां तक हम देखते हैं स्त्रियों के भेद वर्णन से कोई लाभ नहीं, हानि अवश्य है; और बहुत भारी हानि है। फिर हम नहीं जानते क्या समझकर लोग इस विषय के इतना पीछे पड़े हैं। आश्चर्य इस बात का है कि इस भेद-भक्ति के प्रतिकूल आजतक किसीने चकार तक मुख से नहीं निकाला। प्रतिकूल कहना तो दूर रहा, नायिकाओं की नई नई चेष्टा वर्णन करनेवालों को प्रोत्साहन और पुरस्कार दिया गया है! इस प्रोत्साहन का फल यह हुआ है कि, नवोढ़ा आदि नायिकाओं के सम्बन्ध में कवियों को अनन्त स्वप्न देखने पड़े हैं। हिन्दी के समान बँगला, मराठी, गुजराती भाषाएं भी संस्कृत से निकली हैं; परन्तु इन भाषाओं में नायिकाओं का कहीं भी उतना साम्राज्य नहीं जितना हिन्दी में है। हिन्दी में इनका आधिक्य क्यों? जान पड़ता है, और कहीं भी ठहरने के लिये सुखदायी स्थान न पाकर बिचारे नायिका-भेद ने, विवश होकर, हिन्दी का आश्रय लिया है! इस विस्तृत विश्व में ईश्वर ने इतने प्रकार के मनुष्य, पशु, पक्षी, वन, निर्झर, नदी, तड़ाग आदि निर्माण किए हैं कि यदि सैकड़ों कालिदास उत्पन्न होकर अनन्तकाल तक उन सबका वर्णन करते रहें तोभी उनका अन्त न हो। फिर, हम नहीं जानते, और विषयों को छोड़ नायिका-भेद सदृश अनुचित वर्णन क्यों करना चाहिए? इसप्रकार की कविता करना वाणी की विगर्हणा है।

८। अब देखिए इसप्रकार की पुस्तकों में लिखा क्या रहता है। लिखा रहता है परकीया (परस्त्री) और वेश्याओं की चेष्टा और उनके घृणित कृत्यों के लक्षण और उदाहरण! परकीया के अन्तर्गत अविवाहित कन्याओं के पापाचरण की कथा!! पुरुषमात्र में पतिबुद्धि रखनेवाली कुलटा स्त्रियों के निर्लज्ज और निरर्गल प्रलाप!!! और भी अनेक बातें रहती हैं। विरह-निवेदन करने अथवा परस्पर मेल करादेने के लिये दूत और दूतियों की योजना का वर्णन रहता है; वेश्याओं को बाज़ार में बिठला कर उनके द्वारा हज़ारों के हृदय हरण किए जाने की कथा रहती है; परकीओं के द्वारा, कबूतर के बच्चे की सी कूजित के मिष, पुरुषों को आह्वान करने की कहानी रहती है! कहीं कोई नायिका अन्धेरे में यमुना के किनारे दौड़ी जा रही है; कहीं कोई चांदनी में चांदनीही के रङ्ग की साड़ी पहन कर, घर से निकल, किसी लता-मण्डप में बैठी हुई किसीकी मार्ग-प्रतीक्षा कर रही है; कहीं कोई अपनी सास को अन्धी और अपने पति को विदेश गया बतलाकर द्वार पर आए हुए पथिक को रात भर विश्राम करने के लिये प्रार्थना कर रही है; कहीं कोई, अपने प्रेम-पात्र के पास गई हुई सखी के लौटने में विलम्ब होने से कातर होकर, आंसुओं की धारा से आंखों का काजल बहा रही है!!!

यही बातें विलक्षण विलक्षण उक्तियों के द्वारा, इस प्रकार की पुस्तकों में विस्तारपूर्वक लिखी गई हैं। सदाचरण के सत्यानाश करने के लिये क्या इससे भी बढ़कर कोई युक्ति हो सकती है? युवकों को कुपथ पर लेजाने के लिये क्या इससे भी अधिक बलवती ग्रैार कोई आकर्षण-शक्ति हो सकती है? हमारे हिन्दी साहित्य में इसप्रकार की पुस्तकों का होना कलङ्क है; लज्जा की बात है; समाज के सच्चरित्र की दुर्बलता का दिव्य चिन्ह है! हमारी स्वल्पबुद्धि के अनुसार इसप्रकार की पुस्तकों का बनना शीघ्र ही बन्द होजाना चाहिए; ग्रैार यही नहीं, किन्तु, आजतक ऐसी ऐसी जितनी घृणित पुस्तकें बनी हैं उनका वितरण होना भी बन्द हो जाना चाहिए। इन पुस्तकों के बिना साहित्य को कोई हानि न पहुंचेगी; उलटा लाभ होगा। इनके न होनेही में समाज का कल्याण है। इनके न होनेही में नव-वयस्क मुग्धमति युवाजनों का कल्याण है। इनके न होनेही में इनके बनाने ग्रैार बेचनेवालों का कल्याण है।

९। जिस प्रकार नायिकाओं के अनेक भेद कहे गए हैं ग्रैार भेदानुसार उनकी अनेक चेष्टा वर्णन की गईहै, उसी प्रकार पुरुषों के भी भेद ग्रैार चेष्टा-वैलक्षण्य वर्णन किए जा सकते हैं। जब नवोढ़ा ग्रैार विश्रब्धनवोढ़ा नायिका होती हैं तब नवोढ़ ग्रैार विश्रब्ध-नवोढ़ नायक भी हो सकते हैं। वासकसज्जा, विप्रलब्धा ग्रैार कलहान्तरिता नायिका के समान वासक-सज्ज, विप्रलब्ध ग्रैार कलहान्तरित नायक होने में क्या आपत्ति आसकती है? कोई नहीं। क्या स्त्री ही अज्ञात-यैावना होती है? पुरुष अज्ञात-यैावन नहीं होता? "रसमञ्जरी" वाले कहते हैं कि स्वभावभेद से पुरुषों के चारही भेद होते हैं—अर्थात् अनुकूल, दक्षिण, धृष्ट ग्रैार शठ; परन्तु अवस्था-भेद से स्त्रियों के अनेक भेद होते हैं। यह बात हमारी समझ में नहीं आती। जिस प्रकार के लक्षण ग्रैार उदाहरण नायिकाओं के विषय में लिखे गए हैं उसी प्रकार के लक्षण ग्रैार उदाहरण प्रायः पुरुषों के विषय में भी लिखे जा सकते हैं। परन्तु हमारे भाषा-कवियों ने नायकों के ऊपर इस प्रकार की पुस्तकें नहीं लिखीं, इसलिये हम उनको अनेक धन्यवाद देते हैं। यदि कहीं वे उस ओर भी अपनी कवित्व-शक्ति की योजना करते तो भाषा का कविता-साहित्य ग्रैार भी अधिक चैापट होजाता।

हे कविते!

(१)

सुरम्यरूपे! रस-राशि-रञ्जिते!
विचित्रवर्णाभरणे! कहां गई?
अलैाकिकानन्दविधायिनी महा–
कवीन्द्र-कान्ते! कविते! अहो कहां?

(२)

कहां मनोहारि-मनोज्ञता गई?
कहां छटा क्षीण हुई नई नई?
कहीं न तेरी कमनीयता रही;
बता तुही तू किस लोक को गई?

(३)

नहीं कहीं भी भुवनान्तराल में
दिखा पड़ै है तव रम्य-रूपता।
सजीव होती यदि जीव-लोक में
कभी कहीं तो मिलती अवश्यही॥

(४)

सती हुई क्या कवि-कालिदास के
शरीर के साथ तभी अनाथ हो?
विलुप्त किम्वा भवभूति-सङ्गही
हुई मही से, अवलम्ब के बिना?

(५)

प्रयाण तूने तब जो नहीं किया,
विराजती भूतल में रही कहीं।
अवश्य श्रीहर्ष-शरीर गोद ले,
सहर्ष तू साथ गई, गई, गई॥

(६)

हुआ पुनर्जन्म फिरङ्ग-देश में;
परन्तु सो भी कुछ काल के लिये।
पता वहां भी मिलता नहीं हमें;
बता कहां है अब तू मनोरमे !

(७)

नितान्त अन्धों पर भी कभी कभी
कृपावती होकर हे सुलक्षणे !
सदैव तू तन्मुख-मन्दिर-स्थिता
प्रकाशती है निज सर्व सम्पदा।

(८)

सुनेत्रधारी यदि तू चहै नहीं;
अनेत्रियों का न अभाव हिन्द में।
अतः उन्हींसे चुन एक अाध को
कृपाधिकारी अपना बना, बना ॥

(९)

कभी कभी तू अब भी दयाधने !
दया करै है इस दीन देश पै।
महान्महाराष्ट्र विशाल-वङ्ग में
विलास तेरा कविते ! कल्ही हुआ ॥

(१०)

मनुष्य सारे सम हैं तुझे सदा;
विचारती जाति न पांति तू कभी।
इसी लिये दोष तुझे न दे सकैं;
अनेक-दोषाकर हाय ! हैं हमी ॥

(११)

अनन्तवर्षावधि तू यहां रही;
तथापि तेरा कुछ ज्ञान हो नहीं।
विचित्रता और विशेष क्या कहैं ?
कृतघ्नता का बस अन्त हो गया ॥

(१२)

अभी हमें ज्ञात यही नहीं हुआ,
रही किमाकारक हे रसात्मिके !
स्वरूपही का जब ज्ञान है नहीं;
विभूषणों की तब क्या कहैं कथा ?

(१३)

तुकान्तही में कवितान्त है—यही
प्रमाण कोई मतिमान मानते।
उन्हें नहीं काम कदापि और से;
अहो महा-मोह ! प्रचण्डता तव ॥

(१४)

कवीश कोई यमकच्छटामयी
महा-घटाटोपवती सुचोलिका।
बनाय नानाविध हे विचक्षणे !
तुझे वशीभूत हुई विचारते ॥

(१५)

सदा समस्या सबको नई नई
सुनाय कोई कवि पाय पूर्तियां।
तुझे उन्हींमें अनुरक्त मान, वे
विरक्त होते नहिं; हा रसज्ञता !

(१६)

कहीं कहीं छन्द; कहीं सुचित्रता ;
कहीं अनुप्रास-विशेष में तुझे।
सुजान ढूंढ़ैं अनुमान से सदा;
परन्तु तू काव्य-कले ! वहां कहां ?

(१७)

सकैं तवाकार बनाय भी यदि,
वृथा परिश्रान्ति तथापि सर्वथा।
बताइए, जीव-विहीन-देह से
सजीव की सुन्दरि ! क्या समानता ?

(१८)

विचार ऐसे जगदम्ब हैं जहां,
न दर्शनों का तव आसरा वहां।
अजेय इच्छा उस ईश की; उसे
मिटाय देवै, यह शक्ति है किसे ?

(१९)

विड़म्बना जो यह हो रही तव ,
समूलही भूल उसे दयामयि !
पधारने की अभिलाष होय जो,
न आव तौभी कुछ काल लौं यहां ॥

(२०)

अभी मिलैगा व्रज-मण्डलान्त का
सु-भुक्त-भाषामय वस्त्र एकही ।
शरीर-सङ्गी करके उसे सदा ,
विराग होगा तुझको अवश्यही ॥

(२१)

इसी लियेही भवभूति-भाविते !
अभी यहां हे कविते ! न आ, न आ ।
बता तुही कौन कुलीन कामिनी
सदा चहैगी पट एकही वही ?

(२२)

सुरम्यताही, कमनीय कान्ति है;
अमूल्य आत्मा, रस है मनोहरे !
शरीर तेरा, सब शब्द मात्र है;
नितान्त निष्कर्ष यही, यही, यही ॥

(२३)

हुआ जिन्हेंको यह तत्व ज्ञात,
तुझे वही वशीभूत करेंगे ।
विलम्ब से वा अविलम्ब से वा
दया उन्ही पै तव देवि ! होगी ॥

(२४)

कुछ समय गए पै योग्यता जो दिखावै
सदय-हृदय होके तू उसीके यहां आ ।
न उचित अबला का नित्य स्वच्छन्द-वास;
बस अधिक कहें क्या ? हे महा-मोद-दात्रि !

बाणभट्ट

रुचिर स्वरवर्णपदा रसभाववती जगन्मनो हरति ।
तत्किन्तरुणी नहि नहि वाणी बाणस्य मधुरशीलस्य * ॥
विदग्ध मुखमण्डन ।

संस्कृत कविता की मध्यावस्था में प्रायः अनेक कवि हुए हैं । उन सबका यथार्थ वर्णन करना कोई सामान्य कार्य्य नहीं है; उसके सम्पादनार्थ बहुत परिश्रम और दीर्घकाल आवश्यक है । एतावता उनमें जो जो प्रमुख होगए हैं उनमें से तीन कविमात्र के विषय में यहां पर लिखते हैं । ये तीन कवि बाणभट्ट, सुबन्धु और दण्डी हैं ।

मध्यमकालीन कविगणों में से इन्हीं तीन कवियों का प्रधानतया वर्णन करने का कारण यह है कि संस्कृत भाषामें गद्य काव्य रचना की † प्रथा इन्हीं कवियों ने प्रचलित की । वास्तव में गद्य काव्य की सृष्टि पद्य काव्य के पश्चात् होनी चाहिए, यह नियम सर्व भाषा के लिये घटित होता है; और इसका कारण भी स्पष्ट ही है । यह बात प्रायः सब मनुष्यों को निज के अनुभव से ज्ञात होगी कि बाल्यावस्था में मनुष्य की कल्पनाशक्ति जैसी तीव्र रहती है वैसी वह आगे उसकी युवावस्था में नहीं रहती; जैसे जैसे मनुष्य को ज्ञान लाभ होता जाता है वैसे वैसे इस कल्पनाशक्ति का ह्रास हो विचारशक्ति का उदय होने लगता है । यही बात जाति के विषय में भी चरितार्थ होती है । उसके सज्ञान दशा में पदारोपण करते ही प्रथम उसकी कल्पना शक्ति कविता के रूप से प्रकाशित होने लगती है । ऐसा होते होते कुछ काल के अनन्तर इसी कल्पनाशक्ति

* इस का अर्थ आगे चल कर लिखेंगे ॥

† हमारे बहुतेरे पाठक कदाचित् गद्यकाव्य का नाम पढ़ बड़ी उलझन में पड़ जाँयगे । उनकी शङ्का के निवारणार्थ यहां पर संक्षेप में कुछ लिखने की अपेक्षा हम यही उचित समझते हैं कि वे काशी नागरीप्रचारिणी सभा के मन्त्री से भारतरत्न साहित्याचार्य्य पण्डित अम्बिकादत्त व्यास प्रणीत 'गद्यकाव्य मीमांसा' को मंगाकर बिचारें तो इस विषय का उन्हें बहुत बोध होजायगा ॥

के गर्भ से तत्त्वजिज्ञासा अर्थात् आसन्नवर्त्ती सृष्टि में जो अनेक चमत्कारिक और आश्चर्योत्पादक पदार्थ सन्तत और जो थोड़े काल तक क्रमानुसार आलोक-पथ में आते रहते हैं, उनका तत्त्व अर्थात् यथार्थ स्वरूप जानने की इच्छा स्वभावतः उद्भूत होती है। पर इस दूसरी मानसिक शक्ति का पहिली से प्रकृतिजात विरोध रहता है; क्योंकि कल्पना अर्थात् असत्यभास का सर्वस्व ऐसी अवस्था में उसका तत्व-जिज्ञासा के साथ कि जिसका सर्वस्व एक सत्यही है कैसे मेल पा सकता है? सारांश यह कि, तत्त्व जिज्ञासा जैसी जैसी हृष्ट पुष्ट एवं बलिष्ट होती जाती है, वैसी वैसी कल्पनाशक्ति उत्तरोत्तर अधिकाधिक हीन क्षीण होती जाती है। अर्थात् कवित्वानुकूल मन की पहिली कोमल अवस्था लुप्त हो सत्यासत्य विवेचना रूप कठोर मानसिक शक्ति का अधिकार बढ़ता जाता है। इस अधिकार के होते ही काव्य-ग्रन्थों की अधिकता मन्द हो उत्तरोत्तर प्रतिपाद्य विषयों की ओर लोगों की मनःप्रवृत्ति होती जाती है। ऐसे विषयों के ग्रन्थों को छन्दोबद्ध रचना यतः किञ्चित् भी शोभाप्रद नहीं होती; सर्वसाधारण की भाषा ही उन्हें अनुकूल होती है। अतः गद्यकाव्य की प्रथा प्रचलित होती है। यह परिपाटी प्रचलित हो ग्रन्थरचना की इसी प्रथा का निश्चित हो जाना भी विद्यावृद्धि का एक शुभ लक्षण है; क्योंकि स्वर संयोग, शब्दालङ्कार और अर्थालङ्कारादि भिन्न भिन्न बहिरङ्ग साधन जो काव्य को मनोहर एवं हृदयग्राही करने के हेतु काम में लाए जाते हैं, उनमें से एक भी गद्यग्रन्थ में नहीं पाए जाते, पर तौभी उनके भावों की मनोहरता एवं सुन्दरता के द्वारा मन का रञ्जन हो सकता है। अस्तु, यह सब प्रतिपादन वर्त्तमान विषयानुमोदित न होने पर भी उसके यहां पर इतने विस्तृत करने का कारण यही है कि इस रमणीक विषय का हमारे केवल भाषा जाननेवाले पाठकों को प्रसंगवशात् कुछ दिग्दर्शन हो जाय, और "काव्य के लिये अज्ञानावस्था विशेष रूप से अनुकूल है", "ज्ञान सम्पन्नता के समय में उसका क्रमशः ह्रास होता जाता है" आदि जो सिद्धान्त सहसा बड़े विलक्षण जान पड़ते हैं, उनका भी उन्हें कुछ भेद विदित हो। उक्त सिद्धान्त का वर्त्तमान विषय के साथ केवल व्यतिरेक सम्बन्ध है; अर्थात् उक्त बातों में से एक भी उसके विषय में चरितार्थ नहीं होती। पूर्वोक्त तीन कवियों ने यद्यपि गद्य-काव्य रचना को परिपाटी प्रचलित की है, तौभी उनकी वह रचना केवल नाममात्र के लिये ही वैसी है। और वास्तव में तो वह पहिली काव्य-रचना का ही रूपान्तर है। पुराकालीन ग्रीक और रोमन लोगों में जिस प्रकार के गद्य-काव्य की प्रथा प्रचलित हुई, और सम्प्रति अंगरेज़ी आदि योरोप की भाषाओं में उसका जो रूप पाया जाता है, वैसा संस्कृत में कदापि किसी काल में उसने ग्रहण किया हो सो नहीं जान पड़ता। उसके गद्यकाव्य का ढङ्ग कुछ निराला ही है, वैसा और किसी भाषा में कदाचित् ही होगा। इस भाषा के वर्णों की बिलक्षण मधुरता एवं प्रौढ़ता है, और रचनावैचित्र के लिये शब्दप्रचुरता, समास बनाने के विलक्षण प्रकार और उनकी दीर्घता का अनिर्बन्ध प्रभृति सामग्री अनुकूल होने के कारण अकेले छन्द को छोड़ कर कविता को पूरी सजावट गद्यकाव्य को देना नितान्त सुकर कार्य्य होगया; यही कारण है कि उक्त तीनों ग्रन्थ रचयितृगण कवियों में परिगणित किए गए हैं।

अपर दोनों की अपेक्षा बाणभट्ट ही विशेष प्रसिद्ध हैं; अतः प्रथम उन्हींका वर्णन प्रारम्भ किया जाता है।

बाणभट्ट ने अपने परम प्रसिद्ध 'कदाम्बरी' संज्ञक ग्रन्थ की भूमिका में अपने पूर्व पुरुषों का नामोल्लेख मात्र किया है; इससे अधिक और परिचय उसमें कुछ नहीं प्राप्त होता। वह त्रुटि उसके अब इधर प्राप्त हुए 'हर्षचरित' नामक ग्रन्थ द्वारा पूर्ण हो सकती है। इस ग्रन्थ के प्रथम उच्छ्वास के अन्त में निम्नलिखित वृत्त पाया जाता है।—

बाणभट्ट के पिता का नाम चित्रभानु, और माता का नाम राज्यदेवी था। बाण जब चौदह वर्ष

का था तभी उसका पिता मृत्यु को प्राप्त हो गया था। भद्रनारायण, ईशान और मयूरक उसके बालमित्र थे। शोण (सोना) नदी के पश्चिम को प्रीतिकूट नामक ग्राम में उसका घर था। इसी नदी के किनारे सेमार के बगल में यष्टिगृह नाम का एक ग्राम था। इस गांव से तनिक आगे बढ़ते ही श्रीकण्ठ नामक देश की सीमा लगती थी। हर्षराजा की राजधानी यहां ही थी।

उक्त प्रकार से अपने कवि के ही ग्रन्थ द्वारा उसके वसतिस्थान का निर्णय हो गया है, और साथ ही थोड़ा सा कुलवृत्तान्त भी ज्ञात हो गया है। पर समय जानने के हेतु कोई साधन हस्तगत नहीं होता। इस देश के प्राचीन काल का पूरा इतिहास यदि हमारे पास होता तो वह इस समय अत्यन्त उपयोगी होता। पर क्या किया जाय! उस साधन का हमारे पास सर्वथा अभाव है ऐसा कहना कदाचित् अनुचित न होगा। और सब विषयों में प्राचीन ग्रीक और रोमन लोगों से समता प्राप्त करनेवाले, और कहीं कहीं तो उनसे भी बढ़ चढ़ गए हुए हमारे भूतपूर्व पुरुषों के हाथ से न जानें विद्या का यह एक प्रधान अंग क्यों छूट गया? इसका कारण चाहे यह मान लिया जाय कि ग्रीक लोग जैसे परराज्यदलित हुए और उन्हें अपनी वीरता प्रदर्शित करने का अवसर प्राप्त हुआ, वैसा अवसर यहां के लोगों को कभी भी प्राप्त नहीं हुआ। वा हिरडोटस्, जिनोफन् और थुसीडिडीज़ के समान हमारे देश के विद्वान् लोग प्रवासविमुखता के कारण देशपर्य्यटन कभी भी न करते थे; वा वे लोग नरस्तुति को मिथ्या मानते थे; वा ग्रन्थलुप्त हो जाने के कारण। इनमें से कारण चाहे जो हो, पर यह बात तो स्पष्ट बोध होती है कि हमारे देश का प्राचीन इतिहास सर्वथा लुप्त हो गया। यह असामान्य हानि केवल उसीके सम्बन्ध से शोचनीय नहीं है, किन्तु ग्रन्थों के सम्बन्ध से भी वह वैसी ही शोचनीय है। जैसे निबिड़ अंधकार में रङ्ग, रूप, आकार और अन्तरादि का ज्ञान सब नष्ट हो जाता है, वैसेही एक इतिहास के अभाव के कारण समस्त ग्रन्थसमूह के विषय में गड़बड़ पाई जाती है। कौनसा ग्रन्थ पहिले लिखा गया, कौनसा पीछे लिखा गया, कौनसा ग्रन्थ अपने जन्मदाता के जीवनकाल में किस प्रकार से समादृत हुआ, इत्यादि अनेक बातें जानने के लिये मन अत्यन्त उत्कण्ठित एवं लोलुप होता है; और उनका बोध होने में भी बड़ी बहार है, कभी कभी तो यह सब आनन्द उन बातों में ही पाया जाता है।

एथेन्स नगर के अरिस्तोफेनीज़ नामक एक प्रहसनकर्त्ता का 'मेघमालासंज्ञक' एक प्रहसन अद्यावधि प्रसिद्ध है। वह यदि अपने 'प्रबोधचन्द्रोदय' की नांई इतिहासप्रसिद्धिशून्य होता, तो क्या आश्चर्य्य है कि उसका सब रस विनष्ट सा न हो गया होता? सारांश, यह कि जैसे किसी मृत स्त्री के मुख द्वारा उसके अपर अंगों का आकार, उसका वर्ण आदि ही केवल दृश्यमान रहता है, पर जीवितकाल का सौंदर्य और मुखमण्डल की शोभा एक बार जो अस्त हो जाती है सो हो ही जाती है, उसकी पुनः कल्पना तक नहीं हो सकती,—उसी प्रकार से संस्कृतभाषा के ग्रन्थों की नूतन शोभा अपने अपने समय के साथ ही प्रायः कभी की लय को प्राप्त हो गई, ऐसा कहने में कोई बाधा नहीं बोध होती। पर यदि वही शोभा इतिहासरूप चित्र में आज दिन ज्यों की त्यों बनी रहती, तो सूर्य्योदय हो सब दिशाओं के प्रफुल्लित होने पर नदी, वृक्ष, पर्वतादि द्वारा चित्र विचित्र रूप धारण करनेवाली प्रकृति देवी की जैसी अपूर्व शोभा आलोक पथ में आती है और उसके समस्त दृश्य रमणीक देख पड़ते हैं, उसी प्रकार से पूर्वोक्त ग्रन्थसंग्रह सम्प्रति की नांई उलझन में न फंस कर यथाक्रम हस्तगत होता, और उससे सम्प्रति की अपेक्षा कहीं बढ़के आनन्द और लाभ प्राप्त होता। तात्पर्य्य यह है कि अपने देश का पुरातन इतिहास उपलब्ध न होने के कारण अपनी और सब जग की बड़ी भारी हानि हुई है। अब यह बात सच है कि प्रसंगवशात 'राज-

तरङ्गिणी' * के से ग्रन्थ द्वारा काम निकल जाता है। पर उसे इतिहास के नाम से पुकारना युक्तियुक्त बोध नहीं होता, क्योंकि पहिले तो उसकी लेख-प्रणाली शुद्ध इतिहास की सी नहीं है, किन्तु वह केवल काव्य की सी है, और दूसरे इतिहास के जो दो सुदृढ़ आधारस्तम्भ कालक्रम और भूगोल (देश ज्ञान) हैं, उनकी ओर लेखकगणोंने वैसा कुछ ध्यान दिया सो नहीं देख पड़ता। भारतवर्ष अत्यन्त विस्तीर्ण देश होने के कारण भिन्न भिन्न प्रान्तों के राजा लोगों ने भिन्न शक प्रचलित किए हैं। एतावता काल का निश्चय करने में बहुत आपत्ति उपस्थित होती है। इसके अतिरिक्त हमलोगों के यहां पूर्व से एक ऐसी भद्दी चाल पड़गई है कि कोई शक वा संवत लिखते ही नहीं। आज दिन भी बहुत से पुराने ग्रन्थ-विद्यमान हैं, पर उनमें से ऐसे कदाचित् ग्रन्थ ही होंगे कि जिनमें उनका शक लिखा हुआ है। पर इतने दूर जाने की भी कोई आवश्यकता नहीं है। आज दिन भी केवल भाषा जाननेवाले वा पुराने पण्डित लोग अपने पत्रों में केवल तिथि अवसर महीने का ही नाम लिखते हैं, वर्ष का शक वा संवत कदापि नहीं लिखते। कहने का अभिप्राय यह है कि अपने भूतपूर्व ग्रन्थप्रणेतृगणों के समय की खोज लगाने के साधनों का अपने पास प्रायः अभाव ही है। तौभी यहां पर एक बड़ी आश्चर्य्यजनक एवं लज्जोत्पादक बात पाठकों को सूचित की जाती है। वह यह कि बाण कवि का समय जानने की अपनी जिस उत्कठ उत्कण्ठा को स्वयं अपने ग्रन्थ तृप्त नहीं कर सके, उसे एक चीन के ग्रन्थ ने पूर्ण किया है !!

यह महदाश्चर्य्य-संयुक्त घटना क्यों कर हुई, और चीन के ग्रन्थ और हमारे बाण कबि के काल का क्या सम्बन्ध है, आदि का यथावत् बोध होने के हेतु यहां पर थोड़े से ऐतिहासिक वृत्त का उल्लिखित होना आवश्यक जान पड़ता है। हमारे पाठकों में से सारज्ञ पाठकों को यह बात अवश्यमेव विदित होगी कि मुसलमानों का अधिकार हमलोगों की बुद्धिप्रबलता का बाधक हो उसकी अवनति का कारण होने के पूर्व सैकड़ों वर्ष लों धर्म्म के सम्बन्ध से इस देश में कई बड़े बड़े उलट फेर हो गए थे। आर्य्य लोगों के मूल वैदिकधर्म्म पर आक्षेप कर पहिला मतभेद बुद्ध ने प्रचलित किया। कालक्रमानुसार बहुतेरे लोग उसके मत का अनुधावन करने लगे और इस प्रकार से धर्म में दो भेद हो गए, और यह नूतनधर्मावलम्बी लोग अपनेको बौद्ध कहने लगे। इनके नवीन मत कैसे थे, इनका उदय, विस्तार और लय कब और क्यों हुआ, आदि बातें इतिहास-लेखकों के बड़े मनोहर बिषय की सामग्री थीं, पर अब उसकी चर्चा करने में लाभ ही क्या है ? पिछली ही खेदकारक बात का यहां पर पुनः एक बार उल्लेख करना चाहिए कि इतिहास के अभाव के कारण हमको समस्त जगत् के साथ इस महल्लाभ से हाथ धो बैठना पड़ा है।

अस्तु, बुद्ध के विषय में यद्यपि हमें कुछ भी ज्ञात नहो हैं* तौ भी यह बात तो स्पष्ट ही है कि उनकी बुद्धि लोकोत्तर होगी, क्योंकि स्वयं उनके विपक्षी ब्राह्मणों ने भी उन्हें ईश्वर का साक्षात् नवम अवतार माना है। जयदेव स्वामी अपने 'गीतगोविन्द' के आदि में लिखते हैंः—

* यह बृहत् ग्रन्थ चार भागों में शेष हुआ है। कल्हण पण्डित ने इसके पहिले भाग में काश्मीर देश का ई० सन् ११४८ पर्य्यंत का इतिहास लिखा है। दूसरे भाग में जोन राजा ने ई० सन् १४१२ पर्य्यन्त का वृत्त लिखा है। तीसरे भाग में (जोन राजा के शिष्य) श्रीवर पण्डित ने ई० सन् १४७७ पर्य्यन्त की घटनाओं को लिपिबद्ध किया है। और चौथे भाग में प्रजयभट्ट ने अकबर के काश्मीर विजय का वृत्तान्त और आगे शाह आलम बादशाह पर्य्यन्त का वृतान्त लिखा है। काव्य रीति के अनुसार यह ग्रन्थ अत्यन्त प्रशंसनीय है।

* आनन्द का विषय है कि केवल भाषा जाननेवाले लोग भी अब काशीनिवासी श्रीयुत बाबू श्यामसुन्दर दास बी० ए० लिखित 'शाक्यवंशीय गौतम बुद्ध' नामक प्रबन्ध द्वारा बुद्ध के विषय में बहुत कुछ परिचय प्राप्त कर सकते हैं।

निन्दसि यज्ञविधेरहह श्रुतिजातं
सदयहृदयदर्शित पशुघातं
केशव धृतबुद्धशरीर जय जगदीश हरे ॥ (ध्रुवपद)

इसमें बुद्धके मुख्य प्रतिपाद्य मत का कथन किया है कि "वेदाज्ञानुसार यज्ञों में जो पशुहिंसा की जाती थी उसका उन्होंने सदय अन्तस्करुण हो निषेध किया"। इस धर्म्मसंस्थापक का मरण अंगरेज़ ग्रन्थकर्त्ताओं ने ईसवी सन के पूर्व ६४३ कहा है। इसके अनन्तर इस धर्म्म ने परमोन्नति प्राप्त की थी। ईसवी सन के पूर्व अनुमान ३०० वर्ष उस धर्म्म का परम प्रसिद्ध अशोक संज्ञक राजा शासन करता था। सुना जाता है कि उसने अपने सम्पूर्ण राज में पश्वादिकों के बध का निषेध कर दिया था। इस समय की साक्षी देनेवाले अक्षरों के खुदे हुए कई स्तम्भ प्रभृति आज दिन भी कहीं कहीं पाए जाते हैं। अस्तु, पर बुद्ध का यह समस्त विभव आगे कुछ काल के अनन्तर समूल विनष्ट हो गया। ईसवी सन के आरम्भ में पर बौद्ध और ब्राह्मणों में प्रचण्ड वाद विवाद हुआ था। तब श्रीमच्छङ्कराचार्य्य ने बौद्ध धर्म्म का खण्डन कर ब्राह्मण धर्म्म को स्थापित किया था*। इस प्रकार से बौद्धों का पराजय होने पर स्वेच्छानुसार कहो, वा राजाज्ञानुसार कहो, उन लोगों ने देश त्याग किया और कोई तिब्बत, कोई चीन और कोई लङ्का में जा बसे। आगे चिरकाल पर्यन्त उन्हें अपने आदि के देश का स्मरण बना रहा था। और बीच बीच में कोई कोई लोग स्वधर्म्मी लोगों के पूर्व के स्थान और विशेषतः अपने धर्म्मोत्पादक की धरती का निरीक्षण करने के हेतु भारत में आया करते थे। इस प्रकार का एक चीनी हुएनसङ्ग नाम का यात्री पिछले दिनों भारत में आया था। उसने ईसवी सन् ६२९ से ६४५ पर्य्यन्त, अर्थात् अनुमान १६ वर्ष लों, भारत में भ्रमण किया था। उसने अपने ग्रन्थ में उस समय के हिन्दू राजाओं का, तथा उसने जितना देश देखा था उसका, वर्णन इतना परमोत्कृष्ट किया है कि योरोप के भुवन विख्यात संस्कृतज्ञ पण्डित मोक्षमूलर महोदय ने उसकी अत्यन्त प्रशंसा की है। सम्प्रति यहां पर हमें यही बात प्रदर्शित करनी अभीष्ट है कि इसी हुएनसङ्ग ने अपने ग्रन्थ में हर्ष राजा का वर्णन किया है। इससे यह बात निश्चित होती है कि ईसवी सन् ६५० के प्रारम्भ में बाण कवि जीवित था। इस गुरुतापूरित वृत्त के खोज लगाने की प्रतिष्ठा सुयोग्य डाक्टर हाल साहिब को, कि जो पिछले दिनों कलकत्ते की ओर थे, प्राप्त हुई है। इस छोटी सी बात से हमारे आधुनिक विद्वान् यदि यह शिक्षा ग्रहण करें कि विद्या की सफलता पल्लवग्राही पांडित्य और शुष्क तर्कना में नहीं हैं, वैसे ही जीवन का प्रधान अभिप्राय विलासप्रियता एवं तंद्रिलता नहीं है, जैसा कि वे अपने आचरण द्वारा लोगों को प्रायः प्रदर्शित किया करते हैं, तो बहुत कुछ लाभ की आशा की जा सकती है।

बाण कवि का अत्यन्त प्रसिद्ध ग्रंथ 'कदम्बरी' है; और आज पर्य्यन्त यही एक उसके नाम से विख्यात था; पर अभी पीछे लिख आए हैं कि अब इधर 'हर्षचरित' नाम का उसका दूसरा ग्रंथ भी प्राप्त हुआ है। यह ग्रंथ अभी चारों ओर तादृश प्रसिद्ध नहीं हुआ है, तथापि उसके अभिधान से यह बात स्पष्ट बोध होती है कि जिस हर्षराजा ने बाणभट्ट को निज आश्रय प्रदान किया था उसका उसने इसमें वर्णन किया होगा। 'चंडिका शतक' नाम का ग्रंथ के विषय में भी अब इधर सुना जाता है कि वह भी बाणभट्ट का लिखा हुआ है। इसके विषय में एक अचरज की बात कही सुनी जाती है। अभी ऊपर उल्लिखित हो चुका है कि बाणभट्ट के बालमित्रों में मयूर भी था। यह आगे बड़ा नामी

* सर्व्वसाधारण की यह सम्मति विलसन् साहिब को स्वीकृत नहीं है। आपने अपने कोश की भूमिका में एक स्थान पर यह लिखा है कि माधवाचार्य्य के शङ्करविजय ग्रन्थ और स्वयं आचार्य्य के ग्रन्थों द्वारा इस मत के लिये कहीं कुछ आधार नहीं मिलता, हां उक्त ग्रन्थ उनके स्वभाव की सौम्यता अवश्य प्रदर्शित करते हैं।

कवि हुआ। इसने अपने महारोग निवारणार्थ सूर्य्यस्तव रूप 'सूर्य्यशतक'* नाम का एक काव्य प्रणीत किया है। इस पुण्यकर्म्मानुष्ठान द्वारा उस का महारोग दूर हो गया और वह पूर्ववत् पुनः सुन्दरकाय होगया। उक्त सूर्य्यप्रसाद की बाण कवि को बड़ी डाह हुई, और उसने अपने हाथ पांव काट लिए। वे उसे पुनः उक्त काव्य द्वारा प्राप्त हो गए। पीछे कालिदास और भवभूति विषयक आख्यायिकाओं के सम्बन्ध में लिखती बार ऐसी जनवार्त्ता के विषय में हम अपना मत प्रदर्शित कर ही चुके हैं; तथापि यहां पर यह बात लिखे बिना लेखनी आगे को संचालित नहीं होती कि उक्त किम्वदन्ती में युक्तिसङ्गतता और सुन्दरता इन दोनों गुणों की ऊणता लक्षित होती है। बाणकवि के नाम से 'पार्वतीपरिणय' नाम का एक नाटक भी प्रसिद्ध है। इस नाटक के विषय में भी हम अपनी सम्मति पीछे लिख चुके हैं†। यहां पर उससे और कुछ अधिक लिखना अभीष्ट नहीं जान पड़ता। उक्त ग्रन्थों की अपेक्षा और भी एक ग्रन्थ की कर्त्तृता अपने कवि की ओर आना चाहती है। वह ग्रन्थ कोई ऐसा वैसा सामान्य ग्रन्थ नहीं है, किन्तु सुप्रसिद्ध नाटिका 'रत्नावली' है। यह मत पूर्वोक्त डाक्टर हाल साहिब का है। 'रत्नावली' का सुप्रसिद्ध रचयिता श्रीहर्ष है; पर अपना कवि जिसका आश्रित था वह हर्ष और यह यदि एकही हों तो इस प्रसिद्धि का कारण सहज ही में कहा जा सकता है। वह कारण यही हो सकता है कि राजा ने बाण कवि को द्रव्य दे उससे उक्त नाटिका लिखाली है, और एक बार वह प्रसिद्ध हो गई हो और वही प्रसिद्धि आजलों चली आती हो। उक्त साहिब को यह शङ्का उपस्थित होने के लिये यह कारण हुआ है कि 'रत्नावली' के कतिपय श्लोक हर्षचरित के श्लोकों से मिलते हैं। हमने 'हर्षचरित' देखा नहीं है, अतः इसके विषय में हम दृढ़तापूर्वक यहां पर कुछ भी नहीं लिख सकते। तौभी इतना लिखदेना आवश्यक समझते हैं कि जब यह मत, आज सैकड़ों वर्षों से चली आती हुई प्रसिद्धि का विरोधी होगा, तब जब लों विश्वासपात्र एवं दृढ़ प्रमाण नहीं प्राप्त होते हैं तबलों उक्त विवाद का निर्णय करना अनुचित है।

एक 'कादम्बरी' बाण कवि का अत्युत्तम ग्रन्थ है; इस ग्रन्थ का जितना भाग स्वयं बाण कवि ने लिखा है, उतना ही यदि उसका ग्रन्थ मानाजाय, तौ भी वह ग्रन्थ बहुत कुछ बड़ा है। एतावता यह कहने में कोई आपत्ति नहीं जान पड़ती कि उसका कवित्वगुण उसमें बहुत समाविष्ट हुआ है। अतः उसके और भी जो ग्रन्थ होंगे उनकी ओर दत्तचित्त न होकर संप्रति उक्त ग्रन्थ को ही समीप रखकर उसके कवित्व गुण की परीक्षा लिखते हैं। भरोसा तो है कि इस कार्य्य में हम धोखा न खाने पावेंगे।

विषयवर्णन-क्रमानुरोध से तो यह समुचित है कि यहां पर वर्त्तमान ग्रन्थ के सम्बिधानक का कथा संग्रह का) उल्लेख किया जाता। पर सम्प्रति यहां पर उसे लिखने के लिये हम असमर्थ हैं। इसका कारण यही है कि वह संक्षेप में नहीं लिखा जा सकता और उसका यों ही थोड़ा बहुत लिखा जाना केवल निरुपयोगी है। अतः इस कथानक के लिखने को एक स्वतन्त्र ग्रन्थ लिखना समझ कर हम उसे यहां पर नहीं लिखते; और इस ग्रन्थ के विषय में पूर्व क्रमानुसार सामान्यतया हमें जो कुछ लिखना है उसका सहसा प्रारम्भ करते हैं।

अङ्गरेज़ी में जिस अद्भुत कथासमूह को 'रोमान्स' के नाम से पुकारते हैं, तदन्तर्गत 'कादम्बरी' परिगणित की जा सकती है। इस ग्रन्थ की नायिका कादम्बरी है। यह एक गन्धर्व की कन्या है। उज्जैन के राजपुत्र चन्द्रापीड़ के साथ इसका विवाह हुआ है। यह राजपुत्र दिग्विजय की अभिलाषा से प्रस्थित हो हिमालय पर कैलास के बगल में डेरा डाले पड़ा हुआ था। एक दिन आखेट को खोज में फिरते फिरते वह एकाकी गन्धर्वों के देश में जा

* यह प्रौढ़ काव्य आज दिन भी प्रसिद्ध है।

† देखो भवभूति की टिप्पणी।

निकला। आगे महाश्वेता और कादम्बरी से उसकी भेंट हुई। महाश्वेता कादम्बरी की सखी और इस उपन्यास की उपनायिका है। इसने पुण्डरीक नामक ऋषिकुमार से विवाह किया था। जन्मान्तर में यही चन्द्रापीड़ का मित्र वैशम्पायन हुआ; और आगे महाश्वेता के शापार्थ पुनः तोता हुआ। कथा के आदि में अंत्यजकन्या जिस सुग्गे को लेकर शूद्रक राजा के निकट आई है वह यही कीर है। शूद्रक भी जन्मान्तर का चन्द्रापीड़ है। अस्तु, इस समास कथानक द्वारा हमारे विज्ञ पाठकगण इस उपन्यास के सन्धानक तथा उसके बृहत्काय एवं आश्चर्योत्पादक होने का अनुमान सहज ही में कर सकते हैं। सम्बिधानक चातुर्य्य वही वस्तु है कि जिसके द्वारा आख्यायिका के प्रायः पर्यवसान पर्य्यन्त आगे क्या क्या होगा उसकी पाठकों को थाह न मिलने पावे और उनका कौतूहल सन्तत जाग्रत बना रहे। इस विशेषता को बाण कवि ने वर्त्तमान ग्रन्थ में बड़ी निपुणता से सन्निविष्ट किया है। आदि में ही नहीं, किन्तु कथा के बीचो बीच आ जाने पर भी दीर्घ काल लों उसके अवसान के विषय में कुछ भी अनुमान नहीं किया जा सकता। आज पर्य्यन्त सहस्रों मनुष्यों ने यह कथा पढ़ी होगी, पर हम नहीं समझते कि उनमें से कितने लोग इस मर्म को समझे होंगे कि शूद्रक और तोता इस कथा के यथाक्रम नायक और उपनायक हैं। जो इस ग्रन्थ के अभिधान का प्रधान कारण है, उसी मुख्य नायिका का आधे से कहीं अधिक ग्रन्थ पढ़ जाने पर परिचय मिलने लगता है; तब लों पाठकों को यह रहस्य यत्किञ्चित् भी नहीं विदित होता को कि इस ग्रन्थ का नाम 'कादम्बरी' क्यों विहित किया गया है। आगे कथा जैसी जैसी बढ़ती जाती है वैसा वैसा उसमें यह सन्देह उत्पन्न होता जाता है कि–निदान एक की वह अवस्था हुई। ग्रन्थकार कथा के आरम्भ को (अर्थात् तोता राजा से और जाबालि मुनि शिष्यों से बोल रहा है सो) भूल तो नहीं गया? आदि में अंत्यज की कन्या एक बार आकर जो चंपत हो जाती है सो, अन्त के पृष्ठों में जा पुनः दृष्टिगत होने लगती है; वह जाति की पतित होने पर भी आदि में उसके निरुपम सौंदर्य्य का इतना वर्णन क्यों किया गया है, उसने तोते को राजा के आधीन क्यों किया, आदि बातों का रहस्य बिलकुल अन्त में जा कर ज्ञात होता है। तात्पर्य यह सम्बिधानक अत्यन्त निपुणता के साथ जोड़ा गया है; अब हिन्दी आदि भाषाओं में इस काव्य की जो मधुरता लाई जायगी उसका इस सम्बिधानक की अपेक्षा अधिक श्रेष्ठ होना सर्वथा असम्भव सा बोध होता है।

पर यह सम्बिधानक उक्त भव्यभवन की नीव मात्र है। इसकी मधुर एवं प्रौढ़ वर्णरचना, श्लेषों की खूबी, भिन्न भिन्न स्थानों के चित्र विचित्र एवं मनोहर वर्णन, आलाप का प्रवाह, आदि के गुणसमुच्चय द्वारा इस ग्रन्थ को जो विलक्षण शोभा प्राप्त हुई है सो वर्णनशक्ति से परे है! प्रथम तो गीर्वाण भाषा ही अनेक गुणसम्पन्न होने के कारण नितान्त मनोहर है, तिसपर फिर उसका बाणभट्ट के से सहृदय चतुर एवं कल्पनाशील कवि के साथ मेल हो जाने पर पूछना ही क्या है? जो जो चमत्कार हों वे सब थोड़े ही हैं। इसमें तनिक भी सन्देह नहीं है कि जिन जिन लोगों ने अपने कवि की अपने पाठकों को अपने प्रकृतिसुलभ वाग्विलास द्वारा आश्चर्यित कर देने की और उनके मन को ठौर ठौर पर चमत्कृत करने की शक्ति का स्वयं अनुभव लिया होगा, उनमें से ऐसा कौनसा रसिक है जो निम्नलिखित गोवर्द्धनोक्ति को यथार्थ मान शिरःप्रकम्प न करेगा और उक्त आचार्य्य जी को न असीसेगा!

> जाता शिखंडीनी प्राक् यथा शिखंडी तथाऽवगच्छामि।
> प्रागल्भ्यमधिकमाप्तुं वाणी बाणो बभूवेति॥

"हम समझते हैं कि जैसे पुराकाल में शिखण्डिनी शिखण्डी हुई, वैसे ही अधिक प्रगल्भता

प्राप्त करने के हेतु वाणी (सरस्वती) बाण हुई*"। आचार्य्य की इस आर्य्या को पढ़ हम इस बात के निश्चित नहीं कर सकते कि यहां पर हम आचार्य्य के सहृदयता की अधिक प्रशंसा करें वा उनकी चतुरता की अधिक प्रशंसा करें।

सारांश, यह ग्रन्थ उक्त प्रकार से अनेक गुण-संयुक्त होने के कारण रमणीक हुआ है। जिस किसीको हिन्दू लोगों की कल्पनाशक्ति, संस्कृत भाषा का शब्दार्थरूप अक्षयभाण्डार, उसका श्लेषादि विचित्रतोत्पादक असामान्य सामर्थ्य, उसके काव्य का नितान्तोज्वल स्वरूप, आदि गुणों के एकत्रित हुए देखने की इच्छा हो, उसकी इच्छा वर्त्तमान ग्रन्थ पूर्णकर सकता है। और इसके अतिरिक्त इस ग्रन्थ के अवलोकन द्वारा प्राचीनकाल की रीति भांति, लोगों की रहन सहन आदि का भी परिचय मिल सकता है। परन्तु विजातीय लोगों द्वारा पददलित होने के पूर्व इस सुवर्णभूमि के अपार विभव का जो दुन्दुभीनाद दूर दूर के देशों में सुनाई पड़ता था, उसका परिचय इस ग्रन्थ द्वारा जिस प्रकार से प्राप्त हो सकता है, वैसा कदाचित् और ग्रन्थ द्वारा न हो सकेगा।

[शेष आगे

मुक्ति का उपाय

[१]

फकीरचन्द की प्रकृति बाल्यावस्था ही से गम्भीर थी। बूढ़े मनुष्यों की सङ्गति में वह कभी बेढब नहीं जँचता था। हँसी दिल्लगी उसे बिलकुल नहीं भाती थी। एक तो वह गम्भीर था ही, तिसपर वर्ष के अधिकांश समय में अपने मुखमण्डल के चारों ओर काले ऊन का गलाबन्द लपेटे रहता था। और थोड़ी ही वयस में उसके ठिड्डू और गाल घने बालों से आच्छादित हो जाने के कारण सारे मुखड़े पर हास्यविकाश के लिये तिलमात्र भी ठौर नहीं बचा था। इन सब कारणों से लोग उसे एक बड़ी ऊंची श्रेणी का मनुष्य समझते थे। उसकी स्त्री कल्याणी का वयस नवीन था और उसका मन भी पार्थिव विषयों में बहुत लगता था। वह नाना भांति के नए नए नावेल पढ़ा करती और पति के ठीक देवता की भांति पूज कर भी तृप्त नहीं होती थी। कुछ कुछ हास्य रङ्ग में भी उसकी रुचि रहती थी और खिलता हुआ पुष्प जैसे वायु के झकोरे और प्रातःकाल के उजाले के लिये व्याकुल होता है, उसी भांति वह भी इस नए यौवन के समय पति से आदर और हास्यमोद की यथापरिमाण प्रत्याशा करती थी; परन्तु पतिदेवता सावकाश पाते ही उसे भागवत पढ़ाते, सन्ध्या के समय भगवद्गीता सुनाते और कभी कभी उसकी आध्यात्मिक उन्नति की इच्छा से शारीरक शासन करने में भी नहीं चूकते थे। जिस दिन कल्याणी के सिरहने के तले गदाधरसिंह की कादम्बरी निकल पड़ी, उस दिन उस लघुप्रकृति युवती के सारी रात आंसू टपकवा कर फकीरचन्द ने दम लिया था। एक तो नावेल पाठ, तिस पर पति से प्रवञ्चना! अस्तु, अविराम आदेश अनुदेश उपदेश धर्म्मनीति और दण्डनीति के द्वारा,—निदान कल्याणी के मुख की मुसक्यान, मन का सुख और यौवन की उमङ्ग पूरी पूरी निचोड़ लेने में स्वामी महाराज कृतकार्य हो गए।

परन्तु अनासक्त मनुष्य के लिये संसार में बहुत विघ्न हैं। होते होते फकीरचन्द के एक पुत्र और एक कन्या ने जन्म लेकर संसार का बन्धन बढ़ा दिया। और पिता की ताड़ना से इतने बड़े गम्भीर

---

* भारतान्तर्गत उद्योगपर्व्व के अन्त में शिखण्डी की कथा वर्णित है। काशीराज की कन्या अम्बा भीष्म से बदला लेने के लिये दूसरे जन्म में पहिले शिखण्डिनी हुई। आगे एक यक्ष ने आजन्म के लिये उसे अपना पुरुषत्व दिया। तब वही शिखण्डी हुई। अनन्तर भीष्म के बध का कारण यही शिखण्डी हुआ। अब इस कथा का अनुधावन कर हमारे आचार्य्य कहते हैं कि इस वैसी ही वाणी का बाण (वर्णयोरभेदः) हुआ ऐसा समझते हैं॥

प्रकृतिवान् पुरुष को भी दफ़तर दफ़तर नौकरी की उम्मीदवारी में निकलना पड़ा। परन्तु जीविका की सम्भावना कहीं भी न देख पड़ी।

तब तो उसके मन में आया कि बुद्धदेव की नाईं संसार ही को त्याग दूं। यह सोच एक दिन गहरी रात को वह घर छोड़ बाहर निकल पड़ा। यहां पर एक और वृत्तान्त कहना आवश्यक है।

[२]

नयागांव-निवासी मनबोधराम के एक ही पुत्र था। नाम उसका माखनलाल। विवाह हो जाने के पश्चात् सन्तान सन्तति न होने के कारण पिता के अनुरोध और नवीनत्व की लालच से माखन ने दूसरा विवाह कर डाला। इस विवाह के अनन्तर यथाक्रम उसकी दोनों स्त्रियों के गर्भ से सात कन्या और एक पुत्र आविर्भूत हुए।

माखनलाल बांका और चपल स्वभाव का था, किसी प्रकार के गुरुतर कार्य में अपनेको फंसाना उसे तनिक नहीं भाता था। एक तो बाल बच्चों का बोझ, तिसपर जब दोनों कर्णधार* दोनों कानों में झटका देने लगे, तो जब और सहा न गया, तो एक दिन अँधेरी रात को उसने भी डुबकी मारी।

बहुत दिन हो गए, उसका कुछ पता नहीं लगता। कभी कभी सुनने में आता है कि उसने पञ्जाब में जाकर एक और ब्याह कर लिया है, और लोग कहते हैं कि अभागे को अब कथञ्चित् शान्ति-सुख मिला है। केवल कभी कभी स्वदेश में आने के लिये उसका मन उतावला हो जाता है, पर फिर फन्दे में पड़ जाने के भय से यहां नहीं आता।

[३]

कुछ दिन रमते रमते उदासीन फकीरचन्द नयागांव में आ पहुंचा। मार्ग के पास ही एक बरगद के तले बैठ कर लम्बी सांस भरके कहने लगा—"आहा, वैराग्यमेवाभयम्! दारा पुत्रं क्षेत्रं वित्तं कोई किसी का नहीं। का ते कान्ता कस्ते पुत्रः"। यों कह कर एक राग उसने छेड़ दिया—

मनुआ मेरी बात को सुनले तू है बड़ा अयाना रे!
मुक्तिपन्थ बतलावे साधू उसको क्यों नहिं माना रे!
जगत की सीपी तोड़ले मनुआ मुक्तिमोति मनमाना रे!
मनुआ तू दिवाना भारी फिरता कहां भुलाना रे!—

अकस्मात् गीत रुक गई। "कौन है वहां? ऐं! पिता जी! मालूम होता है कि उन्हें मेरा पता लग गया! अरे बड़े आपद में आ फँसे! फिर जान पड़ता है कि संसार के अन्धकूप में खींच ले जायंगे! भागना पड़ा।"

[४]

झट पट फकीरचन्द पास के एक गृह में घुस पड़ा। बूढ़ा गृहस्वामी चुपचाप बैठा हुआ तमाकू पी रहा था। उसे घर में घुसते देख कर पूछा "तुम कौन हो जी?"

फकीर—बाबा, मैं सन्यासी हूं।

वृद्ध—सन्यासी! देखें, देखें, उजाले में तो आओ। यों कह कर वृद्ध उसे उजाले में घसीट लाया और बड़े यत्न से फकीरचन्द के मुख पर झुक कर, बूढ़े मनुष्य जैसे बड़ी कठिनाई से पोथी पढ़ते हैं, उसी भांति उसके मुख को निरीक्षण कर धीरे धीरे कुछ बड़बड़ाने लगा—

"अरे यह तो हमारा माखनलाल दीखै है! वही आंख, वही नाक, खाली माथा कुछ बदलसा गया है, और चांद से मुखड़े को दाढ़ी मोछ ने बिलकुल घेर लिया है!" यों कह कर उस वृद्ध ने प्यार से फकीरचन्द के जङ्गलमय मुखपर दो एक बार हाथ फेरा और फिर कहा "माखन, बेटा!"

इसके कहने का कोई प्रयोजन नहीं है कि वृद्ध मनबोधराम था।

फकीर—(विस्मित होकर) माखन! मेरा नाम तो माखन नहीं है! पहिले मेरा नाम चाहे जो कुछ रहा हो, अब मेरा नाम चिदानन्द स्वामी है। और चाहो तो मुझे परमानन्द भी कह सकते हो।

मनबोध—बेटा, तुम अब अपना नाम चाहे ऊधो रक्खो चाहे माधो, मेरे लिये तुम माखन ही हो, यह भला मैं कैसे भूल सकता हूं? बेटा रे, तूने

* इसरा अर्थ नौका चलानेवाले केवट॥

कौन से दुःख के मारे गृहस्थी छोड़ दी ? तुझे किस वस्तु का अभाव है ? दो दो स्त्रियां घर में हैं, बड़ी से प्रेम न हो छोटी है। लड़के बालों का भी कुछ क्लेश नहीं। राम की दया से तेरे सात बेटियां हैं, एक बेटा है। तुझे किस बात की कमी है! और मैं बूढ़ा बाप और कै दिन जीऊंगा, तेरा राजपाट सब तुझ ही को फलेगा।

फकीरचन्द चौंक कर बोल उठा "अरे बापरे! सुनते भी डर लगता है!"

इतनी देर में उसे वास्तविक बात ज्ञात हुई। सोचने लगा हानि क्या है, दो दिन वृद्ध का पुत्र ही बन कर छिप रहूं। फिर पिता जब मेरा खोज पता न पाकर लौट जांयगे तो मैं भी यहां से चल खड़ा होऊंगा"।

फकीर को निरुत्तर देख वृद्ध के मन में और कुछ संशय नहीं रहा। नौकर को पुकार कर बोला अरे ओ किसना, सब लोगों से तू जाकर कह आ मेरे माखन लौट आए हैं।

[५]

देखते देखते लोगों की भीड़ जम गई। आस पास के प्रायः अधिकांश लोगों ने कहा हां वही है। किसी किसीने सन्देह भी जताया। परन्तु विश्वास करने के लिये सब इतने व्यग्र हो रहे थे कि सन्दिग्ध मनुष्यों पर वे बिगड़ बैठे। मानो ये लोग जान बूझ कर रसभङ्ग करने आए थे, मानो ये न भूत को मानते थे न ओझा ही को। आश्चर्य कथा को सुनकर जब सब लोग भौचक्के हो गए, उस समय भला ये मनुष्य सन्देह कैसे करने बैठे! इन्हें तो एक प्रकार का नास्तिक ही कहना चाहिए था। पर, चाहे भूत पर विश्वास न भी करते, किन्तु बूढ़े बाप के खोए हुए पुत्र को सामने देखते हुए विश्वास न करना तो बड़ी हृदयहीनता का कार्य था। अस्तु ये अविश्वासी सब लोगों से ताड़ना खाकर दुम दबाकर वहां से चल खड़े हुए।

फकीरचन्द के अति भीषण, अटल गाम्भीर्य पर तिल भर भी ध्यान न देकर टोले के लोग उसे घेर कर कहने लगे—"अरे, अरे, हमारे माखनलाल आज ऋषीश्वर हुए हैं, महात्मा बन बैठे हैं! जनम भर तो बांके छैले बने फिरा किए, आज अकस्मात् महामुनि यमदग्नि बन बैठे हैं"।

उन्नतचेता फकीर को यह बात बहुत बुरी लगी। परन्तु निरुपाय होने के कारण सब सह लेना पड़ा। एक मनुष्य देह से चिपट कर बोल उठा, "अरे माखन, तू तो जामुन सा काले रङ्ग का था, ऐसा गोरा कैसे बन गया?"

फकीरचन्द ने उत्तर दिया "योगाभ्यास के कारण।" सब बोल उठे "ओः हो! योग का कैसा आश्चर्यमय प्रभाव है!!"

एक मनुष्य बोल उठा आश्चर्य का इसमें क्या कारण है? शास्त्र में लिखा है कि हनुमान जी की पूंछ पकड़ कर जब भीमसेन उठाने लगे तो वह उससे नहीं उठी। यह कैसे हुआ? योगबल हो से न!

यह बात सबको मानलेनी पड़ी।

इतने में मनबोधराम ने आकर फकीरचन्द से कहा "बेटा, एक बार भीतर चलो"।

गृह के भीतर स्त्रियों के निवासभवन में जाने की सम्भावना पहिले फकीरचन्द की बुद्धि में नहीं आई थी। अब वृद्ध की बात सुनते ही सहसा वज्रपात के समान उसके मस्तिष्क में घुस गई। बहुत देर तक चुप रह कर और महल्लेवालों के अनेक अन्याय परिहास को सहकर अन्त में वह बोला "बाबा! मैं सन्यासी होगया हूं। मैं अन्तःपुर में नहीं जा सकता"।

इसपर मनबोधराम ने सब लोगों से कहा, "महाशयो! जब ऐसी बात है तो आप लोग कृपा कर एक बार बाहर चले जाइए। बहुओं को मैं यहीं लिए आता हूं। वे बहुत व्याकुल हो रही हैं"।

सब लोग उठ गए। फकीर ने सोचा मैं भी इसी अवसर में चल खड़ा होऊं। परन्तु तुरन्त यह सोच कर चुपचाप खड़ा रहा कि बाहर जाते ही गांव के सब लोग मेरे पीछे कुत्तों की भांति पड़ जांयगे।

माखनलाल की दोनों स्त्रियां ज्यों ही उसके सामने आईं त्योंही फकीरचन्द ने साष्टांग दण्डवत करके कहा माता, मैं आप लोगें का पुत्र हूं।

बस, तुरन्त उसके नाक के सामने, कङ्कन पहिरा हुआ एक हाथ खड्ग के समान आ लपका और टूटी हुई कांसे की थाली जैसे बजती है उसी प्रकार के स्वर से एक स्त्री बोल उठी "क्यों रे! तूने किसको माता कहा?"

उसी क्षण एक दूसरा कण्ठस्वर दो सुर और ऊपर को चढ़ कर मुहल्ले भर को कँपाकर झङ्कार उठा "तेरी आंखें फूट गई हैं? तू मरता क्यों नहीं"?

फकीरचन्द को अपनी स्त्री के पास ऐसी ठेठ हिन्दी सुनने का अभ्यास नहीं था। इससे बड़ा कातर हो कर वह हाथ जोड़ कर बोला "आप लोग भूल रही हैं। मैं उजाले में खड़ा होता हूं। मुझे अच्छी तरह देख लीजिए"।

प्रथमा और द्वितीया दोनों साथ साथ बोल उठीं "हां, हां, बहुत देखा है। देखते देखते आंखें घिस गई हैं। तुम छोटे से बच्चे नहीं हो। आज नए नहीं जनम हो। तुम्हारे दूध के दांत बहुत दिन हुए टूट गए। तुम्हारे उमर का क्या कुछ ठिकाना है? यमराज तुम्हें भूलगए हैं, हम नहीं भूली हैं"।

इस भांति एक तरफ़ा दाम्पत्य आलाप कब तक चलता, यह विचार करना कठिन है; क्योंकि फकरीचन्द सम्पूर्ण वाक्‌शक्तिरहित होकर सिर नीचा किए खड़ा था। ऐसे समय बहुत गुल गपाड़ा सुनकर और गृह के बाहर भीड़ बहुत जमते देख कर मनबोधराम वहां पर आया। कहने लगा "आज तक मेरा घर निस्तब्ध था, कोई चूं तक शब्द नहीं करता था। आज जान पड़ता है कि मेरा माखन घर आगया है"।

फकीरचन्द ने हाथ जोड़ कर कहा "महाराज! अपनी पतोहुओं के हाथ से मेरे प्राण बचाइए"।

मनबोधराम-"बेटा, बहुत दिनों में आज घर आए हो इसीसे पहिले पहिल कुछ अनकुस मालूम पड़ता होगा। तो बेटिओ, अब तुम लोग जाओ। माखन मेरा तो अब यहीं रहेगा, उसे अब किसी भांति नहीं जानें देंगे"।

दोनों स्त्रियां जब बिदा हो गईं तो फकीरचन्द ने मनबोधराम से कहा "महाशय, आपका पुत्र जिस कारण से गृहस्थी छोड़ गया है मुझे उसका ज्ञान अच्छी रीति से हो गया। महाशय, मैं आपको प्रणाम करता हूं। मैं अब चला"। उसे जाते देख बुड्ढा ऐसे उच्चस्वर से रोने लगा, कि मुहल्ले के लोगों ने समझा कि माखन अपने पिता को मार रहा है। हैं! हैं! करते हुए सबके सब फिर आंगन में घुस पड़े और फकीर से कहने लगे कि अब तुम्हारे पाखण्ड से काम न चलेगा। भले आदमियों की नाईं चुपचाप रहो तो अच्छा, नहीं तो तुम्हारी भी पूरी पूरी खबर ली जायगी। एक मनुष्य ने कहा "आप परमहंस नहीं हैं, परम बगुला हैं!"

जब फकीरचन्द पिता के यहां गम्भीर मूर्त्ति को गलमुच्छे और गलाबन्द से सुशोभित रखता था उस समय उसे कभी ऐसी ऐसी कुत्सित कथाएं नहीं सुननी पड़ी थीं। परन्तु वह फिर भाग न जाय इसलिये सब लोग बहुत सावधान हो गए। स्वयं गांव के ज़मीदार भी मनबोधराम का पक्ष लेने लगे।

[६]

फकीरचन्द ने देखा कि पहरा इतना कड़ा बैठा है कि मृत्यु के पहिले ये लोग उसे कभी घर से बाहर नहीं होने देंगे। इसलिये चुपचाप बैठा बैठा बैठा वह गाने लगा—

मुक्तिपन्थ बतलावैं साधू उसको क्यों नहिं माना रे!

यहां इसके कहने का कुछ प्रयोजन नहीं है कि भजन का आध्यात्मिक अर्थ इस समय बहुत क्षीण हो गया था।

अस्तु, यों भी किसी भांति समय कट ही जाता। परन्तु माखनलाल के लैाटने का समाचार पाकर दोनों स्त्रियों के नाते से साले और सालियों की एक पलटन की पलटन आ पहुंची।

वे लोग आतेही पहिले तो फकीरचन्द की मोछ दाढ़ी पकड़ पकड़ कर खींचने लगे। कहने लगे यह कुछ सच मुच की दाढ़ी थोड़े ही है। इसने ढोंग करके मुंह पर बहुत से बाल चिपका लिए हैं। इस भांति नाक के नीचे के बाल पकड़ पकड़ कर खींचने से फकीरचन्द के समान बड़े बड़े महात्मा पुरुषों के लिये भी अपना माहात्म्य रक्षा करना कठिन हो जाता है। इसके सिवाय कान पर भी उपद्रव हो रहा था। सचमुच कनैठी देने के उपरान्त लोग विशेष कर ऐसी ऐसी भाषा सुना रहे थे कि जिन्हें सुनने से न ऐंठने पर भी कान आप ही लाल हो जाते हैं। कोई कोई साधू को ऐसे ऐसे भजन गाने की आज्ञा देने लगे कि आधुनिक बड़े बड़े पण्डित लोग भी उनकी आध्यात्मिक व्याख्या करते हुए हार जाते हैं। सोते, जागते, भोजन करते, सब समय इन सम्बन्धियों ने फकीरचन्द का नाक में दम कर दिया। वह बिचारा क्रोध से भर कर कभी दुखी होने और कभी चिल्लाने और धमकाने लगा, परन्तु उपद्रवियों के मन में भय का कुछ भी सञ्चार न हुआ। वरन् सर्वसाधारण के पास वह अधिकतर हास्यास्पद ही हुआ। इन सबके ऊपर किवाड़ों की ओट से कभी कभी एक मीठे स्वर की हंसी सुन पड़ती थी। वह स्वर परिचित सा जान पड़ा और उसे सुन सुन कर फकीरचन्द दुगना अधीर होने लगा।

परिचित स्वर पाठक का अपरिचित नहीं है। मनबोधराम किसी दूर के नाते से कल्याणी के मामा थे। मातृपितृहीना कल्याणी ससुराल में जब बहुत क्लेश उठाती तो किसी न किसी बहाने वह अपने कुटुम्बियों के घर चली आती थी। आज बहुत दिन पीछे अपने मामा के घर आ कर वह नेपथ्य से परम कैतुकमय अभिनय को देख रही थी। उस समय उसकी स्वाभाविक रङ्गप्रियता के साथ ही प्रतिहिंसा की प्रवृत्ति भी उभड़ आई थी कि नहीं, इस बात को चरित्र तत्वज्ञ पण्डित लोग समझ लें। हम इसके विचार करने में असमर्थ हैं।

परिहास सम्पर्की लोग तो कभी कभी चुप भी हो जाते थे, परन्तु स्नेहसम्पर्की जनों के हाथ से छुटकारा मिलना कठिन था। सात कन्या और एक पुत्र एक क्षण भर भी उसे नहीं छोड़ते थे। पिता के स्नेह पर अधिकार जमाने के लिये उनको माताओं ने उन्हें उसके पास से पल भर नहीं हटने दिया था। तिसपर दोनों माताओं में टक्कर चल रही थी, दोनों चाहती थीं कि मेरी ही सन्तति को पितृस्नेह का अधिकतर भाग मिले। दोनों दल मिल कर उसके गोद में बैठ कर, उसका गला पकड़ कर, मुख चूम कर, तथा अन्य नाना उपायों से प्रबल-स्नेह-प्रकाश के कार्य्य में एक दूसरे को जीतने की चेष्टा करने लगे। इसमें कोई सन्देह नहीं है कि फकीरचन्द का स्वभाव यदि अत्यन्त निर्लिप्त न होता तो अपनी सन्तान को भी बिना दुःखद्वन्द के छोड़कर वह कभी नहीं जा सकता था। बालकगण भक्ति को नहीं पहिचानते हैं और न उन्होंने साधुत्व की ही मर्यादा सीखी है, इसलिये फकीरचन्द शिशुजाति के प्रति तिलमात्र भी अनुरक्त नहीं होता था। वह उन्हें कीट पतङ्गों की नाईं अपनी देह से दूर ही रखना चाहता था। इस समय वह रात दिन शिशुरूपी टिड्डियों के दल से आच्छादित हो कर बर्जाइस अक्षर* के छोटे बड़े नोटों से साद्योपान्त समाकीर्ण ऐतिहासिक प्रबन्धों की नाईं शोभायमान हुआ। अनेक समय शुद्ध शुचि फकीरचन्द की आंखों से आँसू निकल पड़ते, पर वे कदापि आनन्दाश्रु नहीं थे।

पराए बालक बालिका जब नाना सुरों से 'पिता' कह कह कर उसे आदरसहित पुकारने लगते, उस समय उसके जी में आता था कि उन्हें ऐसा मारे कि वे मरही जांय। परन्तु डरके मारे कुछ नहीं कर सका, आँख भौं चढ़ाकर मुंह टेढ़ा करके चुपचाप बैठा ही रहा।

---

* एक प्रकार के छोटे टैप का नाम है, जो बहुधा फुटनोट आदि छापने में लगता है।

[७]

अन्त में वह बहुत गुल गपाड़ा माचने लगा और बोला कि "मैं जाता हूं, देखूं कौन मुझे रोकता है"। तब सब गांववाले एक मुखतार को बुला लाए। मुखतार ने आकर कहा "आप जानते हैं कि आपकी दो स्त्रियां हैं।"

फ—जी, यह मैंने आज पहिले पहिल सुना।

मु—और आपकी सात कन्याएं और एक पुत्र हैं। दो कन्याएं उनमें से विवाह के योग्य हैं।

फ—जी, मैं देखता हूं कि आप मुझसे भी बहुत अधिक जानकारी रखते हैं।

मु—इस भारी परिवार के पालन पोषण का भार यदि आप अपने ऊपर न लें तो आपकी दोनों अनाथिनी स्त्रियां अदालत का आश्रय लेवेंगी। यह मैं आपको पहिले से जताए देता हूं।

अदालत के नाम से फकीरचन्द बहुत डरता था। वह जानता था कि वकील लोग जिरह करने के समय महापुरुषों की मान मर्य्यादा वा उनके गाम्भीर्य्य का कुछ भी आदर नहीं करते। प्रकाश में वे उनका अपमान करते हैं और सम्वादपत्रों में भी छपवा देते हैं। फकीरचन्द नेत्रों में आंसू भर कर मुखतार महाशय से अपना विस्तारित परिचय कहने लगे। मुखतार सुनकर उसकी चतुराई, उपस्थित बुद्धि और मिथ्या कहानी रचने की असाधारण क्षमता की बारम्बार प्रशंसा करने लगा, जिसे सुन फकीर के जी में यों आने लगा कि आप अपने हाथों अपने प्रान ले डालूं तभी अच्छा है।

मनबोधराम फकीरचन्द को फिर भागने में तत्पर देखकर शोक से अधीर हो रोने लगा। इस [illegible] टोलेवाले सब लोग चारों ओर से उ[illegible] मन[illegible]ना गालियां देने लगे। और मुखतार ने उसे ऐसा डराया कि उसके मुख से फिर कोई शब्द तक नहीं निकला।

इन सबके ऊपर आठ आठ बालक बालिकाओं के गाढ़े स्नेह ने उसे चारों ओर से इस प्रकार घेर लिया था कि विचारे का दम घुटने लगा। तब उसकी विपत्ति को देखकर ओट में बैठी हुई कल्याणी यह ठीक न विचार सकी कि वह हँसे अथवा रोवे।

कई दिन जब इसी भांति बीत गए, और जब प्राण बचने का कोई और उपाय न रहा तो फकीरचन्द ने एक पत्र द्वारा अपने पिता को अपना यथार्थ समाचार लिख भेजा। उसके पिता पत्र के पढ़ते ही तुरन्त चले आए। परन्तु टोलेवाले और जिमोदार, मुखतार, आदि कोई उसपर से अपना अधिकार नहीं छोड़ना चाहते थे। उन लोगों ने सब भांति से प्रमाणित कर दिखाया कि यह सन्यासी माखनलाल को छोड़ दूसरा और कोई नहीं है। यहां तक कि जिस दासी ने माखनलाल को शिशुकाल में गोद में लेकर खिलाया और पालन किया था, उस बुढ़िया तक को वे पकड़ लाए। उसने अपने कांपते हुए हाथों से फकीरचन्द की ठुड्डी पकड़ कर बड़ी बेर तक उसके मुख को निरीक्षण कर उसकी दाढ़ी पर आंसू की धारा बहा दी।

जब देखा कि फकीर अब भी राह पर नहीं आया, तो घूंघट से मुख छिपाकर माखन की दोनों स्त्रियां वहां आ पहुंचीं। सबलोग चट पट बाहर उठ गए। केवल दोनों पिता, फकीर और शिशुगण वहां पर रहे।

स्त्रियां हाथ हिला हिला कर दोनों ओर से पूछने लगीं "किस भाड़ में, यमराज की कौनसी गुफ़ा में जाने को जी चला है?"

फकीर इस प्रश्न का ठीक ठीक उत्तर न सोच सका, इस कारण निरुत्तर रहा। परन्तु उसके भावों को देखकर ऐसा कुछ नहीं जान पड़ा कि वह किसी विशेष यमगुफा का पक्षपाती था। इस समय कोई भी गुफा उसे मिल जाती तो उसके प्राण बच जाते। तब एक और स्त्री की मूर्त्ति वहां पर आई और उसने फकीर के चरणों में प्रणाम किया। फकीर पहिले तो अचरज से अवाक् हो

गया, परन्तु तुरन्त आनन्द से उछल कर बोल उठा "अरे, यह तो कल्याणी है!"

इससे पहिले कभी अपनी अथवा पराई स्त्री के देख उसके मन में इतना प्रेम प्रकाशित नहीं हुआ था। उसने समझा कि मूर्त्तिमती मुक्ति आकर आप साक्षात् खड़ी हो गई है।

ठीक इसी समय एक और मनुष्य दुशाला ओढ़े हुए वहां पर सिर बढ़ाकर ताक रहा था। उसका नाम था माखनलाल। एक अपरिचित निरीह मनुष्य के अपने पद पर अभिषिक्त देख कर उसे एक अपूर्व सुख का अनुभव हो रहा था। परन्तु जब कल्याणी को सामने आते देख कर उसे जान पड़ा कि यह मनुष्य उसीका बहनोई है, तो दया-परतन्त्र होकर सबके सामने आकर वह बोला, "नहीं, अपने कुटुम्ब के इस भांति विपद में डालना महापातक का कार्य है। दोनें स्त्रियें की ओर दिखा कर उसने कहा "यह मेरी गगरी है और यह मेरी रस्सी"*। माखनलाल के इस असाधारण महत्व और वीरत्व से गांव भर के सब लोग आश्चर्यित हो गए। †

फ़ोटोग्राफ़ी

[पूर्व प्रकाशित के आगे]

एनलार्जिंग वा प्रवर्द्धित चित्रण

नेगेटिव से इच्छानुसार चित्र बढ़ा कर छापने को एन्लार्जमेन्ट वा वर्द्धित चित्रण कहते हैं। यह भी आलोक-चित्र-मुद्रण-प्रणाली की एक शाखा है। चित्र बढ़ाने के लिये एक स्वतन्त्र यन्त्र के लेने की आवश्यकता है जिसे एन्लार्जिंग एपारटस (Enlarging apparatus) कहते हैं जो देखनेमें फ़ोटो के क्यमरे के समान होता है, किन्तु इसके पीछे एक लालटेन लगी रहती है। हमारे पाठकों में से बहुत से ऐसे महाशय होंगे जो मैजिक लालटेन के छाया चित्र के खेल से परिचित हों। यह एन्लार्जिंग एपारटस भी उसीके समान होता है, किन्तु यह मैजिक लान्टेन की अपेक्षा उत्तम रीति से बना रहता है। इसके पीछे लालटेन में एक लम्प जलता रहता है और उसके सामने एक शीशा लम्प के समान लगा रहता है। इन्हीं दोनो मध्यवर्त्ति स्थान के मध्य में ६-७-इञ्च के व्यास का एक बड़ा लेन्स वा कन्डेन्सर लगा रहता है। इसी कन्डेन्सर की ओर सामने वाले लेन्स के मध्य में तुम्हें अपने छोटे नेगेटिव को रखना होगा।

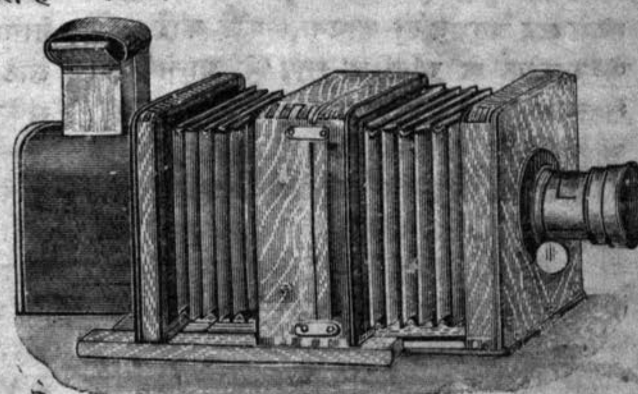

एक अंधेरे मकान में एक टेबिल पर वा त्रिपाई पर अपने एन्लार्जिंग एपारेटस को रक्खो और उस के सामने की दीवाल में एक ड्राइङ्ग बोर्ड Drawing Board अर्थात् चौकोने तखते को कांटों से जड़ कर वा कड़ी से लटका कर, और उसके ऊपर एक सादा कागज़ लगा कर उक्त यंत्र से उसके ऊपर चित्र को पातित करो और लेन्स की सहायता से फोकस को ठीक करो। जब छाया कागज़ पर

---

* यह बङ्गभाषा का एक चलित प्रवचन है। अर्थ—इस रस्सी से इस गगरी को गले में बांध कर गङ्गा जी में डूब मरूंगा। इनसे मेरा पिण्ड नहीं छूटने का। लोग प्रायः ग्लानि दिलाते समय कहते हैं कि 'गले में रस्सी और घड़ा बांध कर डूब मरो'॥

† बङ्गभाषा के प्रसिद्ध लेखक श्रीयुत् बाबू रवीन्द्रनाथ ठाकुर की लिखी कहानी का अनुवाद उनकी सम्मति से प्रकाशित हुआ, इस कारण उनको धन्यवाद है॥

पूर्वोक्त नेगेटिव के समान स्पष्ट दिखाई पड़े तब उस यन्त्र को हटाना बढ़ाना नहीं चाहिए। इसी छाया को बड़ी वा छोटी करने के लिये यन्त्र क्रम से सामने की ओर पीछे को हटा लेना उचित है। जब इच्छानुसार बड़ी और स्पष्ट हो जाय तब काले रंग के शीशे की आवरणी वा कैप से लैंस का मुंह बन्द कर दो। अब बढ़ाए हुए चित्र की छाया के बराबर ब्रोमाइड् पेपर (Bromide paper)* को उक्त बोर्ड पर ड्राइंग पिन् (Drawing pin) से लगा कर और कैप खोल के उसे एक्सपोज अर्थात् आलोकित करो। नेगेटिव की घनता (Deepness) के अनुसार एक्सपोज अधिक और कम करना पड़ता है। यद्यपि एक्सपोज करने के नियमों को लिख कर किसी व्यक्ति का हृदङ्गम कराना बड़ा ही कठिन है, तथापि साधारणतः इक्सपोज ५ से दस मिनट तक करना आवश्यक है।

इसका कुछ दिनों तक अभ्यास करने से सहज ही में सब अनुभव हो जायगा। कोई कोई लम्प के आलोक के अतिरिक्त सूर्य्य के आलोक की सहायता से भी एन्लार्ज करते हैं।

नीचे जो चित्र दिया गया है इससे सूर्य्यालोक की सहायता से इन्लार्ज करने का उपाय दिखाया गया है।

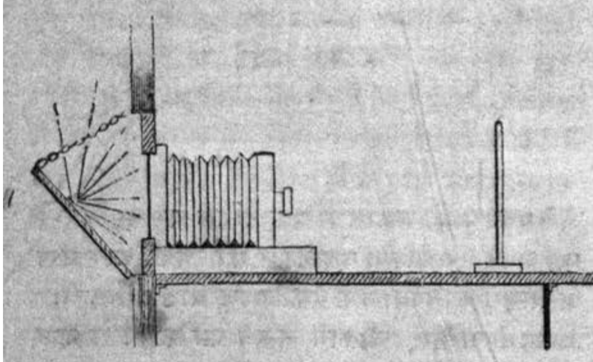

सूर्य्यालोक से चिच प्रवर्द्धित करना

अंधेरी कोठरी के मध्य में लाल रोशनी के लिये जैसे स्थान खुला रहता है, अथवा किसी किसी किवाड़ों में कोठरी में चांदना पहुंचने के लिये छोटी सी खिड़की बनी रहती है, ऐसे द्वार का परिमाण चारों ओर से सात इञ्च रहने से वह कार्य्योपयुक्त हो सकता है। ऐसे द्वार के सामने अन्धेरी कोठरी के मध्य में एक कन्डेसर रक्खो। यदि कन्डेसर न हो तो एक घिसा हुआ शीशा वा ground glass रख देना चाहिए, और इसी कन्डेसर के सामने एक क्यामरा रक्खो, जिसके पीछे का भाग उस छोटे से छिद्र की ओर रहे और लेन्स अथवा क्यामरे का मुख उपर्युक्त कोठरी के भीतर की ओर रहे। पीछे क्यमरे के साथ जो ग्राउण्डग्लास रहता है उस को हटाकर वा खोल कर डार्क स्लाइड के दोनों ओर के स्लाईड को हटाकर दरजा खोलकर जैसे उसमें प्लेट रखते हैं, वैसेही अपने प्रवर्द्धित करनेवाले चित्र का नेगेटिव उसमें रक्खो। ध्यान रहे कि नेगेटिव के फिलम का मुख लेन्स की ओर रखना होगा। अब तुम्हें उक्त कोठरी के बाहर की ओर छोटे दरवाज़े के सामने एक सफ़ेद कपड़ा वा सफेद कागज़ धूप में टांगना होगा कि जिसका उजेला उपर्युक्त द्वार पर अच्छी तरह पड़े और वहां से कोठरी के भीतर ग्राउण्ड ग्लास पर से होता हुआ नेगेटिव और लेन्स को भेद कर कोठरी के भीतर दीवार पर पड़ सके। अब पुनः भीतर जाके इस आलोक की सहायता से क्यामरे और लेन्स द्वारा अपने चित्र को प्रवर्द्धित करो। पहिले के रक्खे हुए क्यमरे और लेन्स से कुछ दूर पर एक स्टैण्ड पर एक पीसबोर्ड खड़ा करके एक कागज़ उसपर लगा दो। इस समय तुम्हारे प्रवर्द्धित करनेवाले चित्र का प्रतिविम्ब उसपर पड़ेगा, जिसपर तुम सावधानी से फोकस करके देखलो कि पूर्वोक्त नेगेटिव के आवश्यकीय भाग का अंश तद्वत् आ रहा है अथवा नहीं। जब छाया स्पष्ट दीख पड़े तब समझ लेना चाहिए कि अब ठीक ठीक फोकस हो गया। इसमें और किसी यंत्र के सहायता की आवश्यकता नहीं है।

* इसमैन का ब्रोमाइड पेपर उत्तम होता है॥

जैसे एक बड़े तालाब में से एक छोटे तलाब में जल भेजने के लिये एक मार्ग अर्थात् नाली बनानी पड़ती है ग्रैार उसी नाली के द्वारा छोटे से लेकर बड़े ग्रैार बड़े से छोटे में पानी जासकता है, उसी प्रकार उसी लेन्स तथा क्यामरे से छोटे नेगेटिव से बड़ा नेगेटिव ग्रैार बड़े नेगेटिव से छोटा नेगेटिव बन सकता है। इसका कारण यही है कि जितने समीप से चित्र लिया जायगा उतनी ही बड़ी तसवीर ग्रावेगी ग्रैार जितनी दूर से उतारी जायगी उतनही छोटी ग्रावेगी।

इस समय ग्रंधेरी कोठरी में फोकस करो ग्रैार जब तुम्हारा फोकस ठीक होजाय तब कमरे के लेन्स पर लाल शीशे की ग्रावरणी से (कैप से) उसका मुख बन्द करके तब उपर्युक्त बोर्ड पर ब्रोमाइड पेपर लगाग्रो ग्रैार ग्रालोक का तेज समझ कर ४-५ सेकेण्ड तक ग्रालोकित ग्रथवा एक्सपोज करो। इसी प्रकार से पहिले छोटे छोटे काम करने से क्रमशः इसके विषय का विशेष ज्ञान भी स्वतः ग्राजायगा। नेगेटिव का फिलम मोटा होने से उसको देरी तक ग्रालोकित करने से ग्रैार यदि फिलम पतला हो तो थोड़ी देर तक ग्रालोकित करने से उत्तम चित्र उतरेगा। बिना २-३ टुकड़े ब्रोमाइड पेपर के खराब किए इसके एक्सपोज़ करनेके समय का हृदयङ्गम होना कठिन है। इसका भी ध्यान रखना चाहिए, कि जिस समय इसके उतारने का काम होता हो, उस समय किसी ग्रैार स्थान से सफेद उजेला न ग्राता हो, यदि कोई ऐसा स्थान हो तो उसे प्रथम बन्द करदेना चाहिए।

चित्र के एक्सपोज़ होने के पीछे ड्राइंगपिन को खोलकर उसी ग्रंधेरी कोठरी में ही डेवेलप इत्यादि कार्य करलेना उचित है।

डेवेलपर वा परिस्फोटक ग्ररक

१	ओक्सलेट आफ पोटास (Oxlate of Potash)	१ आउंस
	सलफूयरिक एसिड (Acid sulphuric)	१ बूंद
	गरम जल	३ आउंस
२	प्रोटो सल्फ आफ आयरन (Proto sulf of iron)	१ आउंस
	सलफूयरिक एसिड	२ बूंद
	गरम जल	२ आउंस
३	ब्रोमाइड पटासियम	½ ड्राम
	जल	२ आउंस

क्लियरिंग सोल्यूशन

४	साइट्रिक-एसिड	१ ड्राम
	जल	२४ आउंस

फिक्सिंग सोल्यूशन

५	हाइपो	३ आउंस
	जल	३२ आउंस

इन सम्पूर्ण द्रव्यों को बना कर ग्रलग ग्रलग बोतलें में रख लेना चाहिए। डेवलप करते समय १ नं० की बोतल से ३ ग्राउन्स, २ नं० की बोतल से ½ ग्राउन्स ग्रैार ३ नं० की बोतल से ३० बून्द एक शीशे के ग्लास में उलट लो ग्रैार एक बड़ी डिश में एक्सपोज किए हुए ब्रोमाइड पेपर के फिलम के भाग का मुख ऊपर कर के साफ जल में भिगो दो ग्रैार जब कागज ग्रच्छी तरह भींगले तब उस जल को फेंक कर पहिले से मिलाए हुए डेवेलपर से डेवेलप करने की चेष्टा करो। थोड़ीही देर में धीरे धीरे चित्र दिखाई देने लगेगा। छायांश का भाग जब सम्पूर्ण दिखाई देने लग जाय तब इस डेवेलपर को ग्रलग उलट कर पूर्वोक्त ४ नं० के ग्ररक से उसको धो डालो। इसमें यह ग्रावश्यक नहीं है कि जैसे प्लेट डेवेलप करने के पीछे साफ पानी से धोना उचित है, वैसे ही ब्रोमाइड कागज को पानी से धोने की कोई ग्रावश्यकता नहीं है, वरन् साथही क्लियरिङ्ग सोल्यूशन से धो डालो। इस ग्ररक को ग्रदल बदल कर दो तीन बार धोना ग्रच्छा है ग्रैार प्रत्येक बार २ मिनिट तक कागज का

अरक में रहना उत्तम है। पुनः सम्पूर्ण रूप से शुद्ध जल से धोकर पीछे ५ नं० के अरक से १० मिनिट तक धोकर फिक्सड कर लो। उपर्युक्त सम्पूर्ण क्रिया के कर लेने के पीछे क्रमागत दो घण्टे तक पानी से धो लेने के अनन्तर सुखा कर कार्ड पर मौन्ट अथवा चिपका दो। इस प्रकार के प्रवर्द्धित चित्र के सम्पूर्ण रूप से सम्पन्न करने के लिये साधारण ड्राईंग अर्थात् अङ्कन विद्या का जानना परम आवश्यक है, क्योंकि इसके असम्पूर्ण स्थान को क्रेयन पिन्सिल (Crayon Pencil) से वा चीन की स्याही (China Ink) से पूर्ण करना पड़ता है। अर्थात् इस चित्र में जहां पर अधिक काला होगया है वा कोई कोई स्थान स्पष्ट नहीं आया है वहां वहां पेंसिल या स्याही से सुन्दर और स्पष्ट करना पड़ता है।

यहां पर ब्रोमाइड पेपर के विषय में कुछ थोड़ा और भी कहना शेष रह गया है, जिसे हम आप लोगों के सन्मुख निवेदन करते हैं। ब्रोमाइड प्रिण्ट यदि अधिक काला हो जाय तो कार्ड पर चिपकाने के पहिले थोड़ा सा साईनाइड आफ पोटासियम (जितने में कागज डूब सके) जल में घोल कर और उसे एक डिश में उलट कर अपने चित्र को डुबोकर थोड़ी देर तक हिलाते रहो। इस अरक में कागज डुबाने के प्रथम उसको पानी में भिगो लेना चाहिए। यद्यपि प्रिंट का रंग उत्कृष्टता का काला तो नहीं होगा, तथापि एक डिश में ५-७ बूंद गोल्ड सेल्यूशन जिसमें कागज डूब सके, इतने पानी में मिला कर और उसे एक दूसरी डिश में उलट कर उसमें अपने प्रिण्ट को धोओ, थोड़ी ही देर में चित्र का सुन्दर काला रङ्ग हो जायगा।

इस संख्या में प्रकाशित विषयों की सूची

पृष्ठ

(१) विविध वार्त्ता [ले० सम्पादक] १८३

(२) वर्षाऋतु वर्णन [ले० पं० श्रीधर पाठक] १८९

(३) प्रलय [ले० पं० सिध्येश्वर शर्म्मा] १९०

(४) नायिका भेद [ले० पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी] १९५

(५) हे कविते (कविता) [ले० पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी] १९८

(६) बाणभट्ट [ले० पं० गङ्गा प्रसाद अग्निहोत्री] २००

(७) मुक्ति का उपाय [ले० लाला पार्वतीनन्दन] २०७

(८) फ़ोटोग्राफ़ी (सचित्र) [ले० सम्पादक] २१३

"सरस्वती" के नियम

१—"सरस्वती" का प्रकाश जहां तक सम्भव हो प्रति अंग्रेज़ी महीने के अन्त में होगा।

२—वार्षिक अग्रिम मूल्य ३) रु० डाकव्यय सहित है। एक संख्या का मूल्य पांच आना। बिना अग्रिम मूल्य के पत्रिका नहीं जायगी।

३—लेख, कविता, समालोचनार्थ ग्रन्थादि और बदले के पत्र तथा लेखादि सम्बन्धीय पत्र "सम्पादक 'सरस्वती', बनारस सिटी," के नाम से भेजने चाहिएं।

४—किसी लेख वा कविता के प्रकाश करने न करने, तथा लौटाने न लौटाने का अधिकार सम्पादक को होगा।

५—द्रव्य तथा प्रबन्ध और विज्ञापन सम्बन्धीय पत्र व्यवहार नीचे लिखे ठिकाने से करना चाहिए—मेनेजर "सरस्वती", इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद।

६—बा० नन्दलाल वर्मा, मेनेजर, फ्रेण्डएण्ड कम्पनी, मथुरा, सरस्वती के एजण्ट नियत किए गए हैं। इस कारण उक्त बाबू साहब के पास भी ग्राहक गण सरस्वती का मूल्य जमा कर उनसे रसीद ले सकते हैं।

७—अश्लील विज्ञापन सरस्वती में नहीं छापे जाते हैं।

८—विज्ञापन की छपाई प्रति पंक्ति दो आना होगी।

९—यदि विशेष दिनों के लिये या विशेष स्थान में विज्ञापन छपवाना या अलग बंटवाना हो तो पत्र व्यवहार से मूल्य स्थिर हो सकता है।

१०—उत्तर के लिये टिकट भेजना चाहिए।

मेनेजर 'सरस्वती'
इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद ॥

लेखकों के लिये नियम

(१) जो लेख "सरस्वती" में छपने के लिये आवेंगे वे यदि सम्पादक को स्वीकृत होंगे तो छाप दिए जायंगे, अन्यथा लेखक के पास बैरंग वा उसके डाक व्यय भेजने पर टिकट लगा कर लौटा दिए जायंगे।

(२) वेही लेख छापे जायंगे जो पूरे होंगे, अधूरे लेखों पर विचार न किया जायगा। परन्तु स्थान के अनुसार वे एक दो वा अधिक संख्याओं में क्रमशः छापे जायंगे।

(३) इस पत्रिका में ऐसे राजनैतिक वा धर्म सम्बन्धीय लेख न छापे जायंगे जिनका सम्बन्ध वर्त्तमान काल से होगा।

(४) लेख एक पृष्ठ पर और स्पष्ट अक्षरों में लिखे हों। प्रथम पृष्ठ का ऊपरी आधा अंश सादा छूटा रहे, बांए हाथ की ओर चौथाई हाशिया रहे, अन्तिम पंक्ति के नीचे दो इञ्च के लगभग स्थान छूटा रहे और प्रति पंक्ति एक दूसरे से इतने अन्तर पर हों कि बीच में एक पंक्ति और लिखी जा सके।

(५) लेख लिखने में उन्हीं नियमों का पालन हो जिन्हें काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा ने सर्व सम्मति से निश्चय किया है।

(६) जिन लेखों में चित्र रहेंगे उन चित्रों के मिलने का जब तक लेखक प्रबन्ध न कर देंगे तब तक वह लेख न छापा जायगा। चित्र का व्यय यदि आवश्यक होगा तो सरस्वती के प्रकाशक देंगे।

(७) लेखों के घटाने बढ़ाने का सम्पादक को पूर्ण अधिकार रहेगा।

बालकों के पढ़ने की रंग बिरंगी तसबीर और किस्सों की दो किताबें

* दाम पांच आने *

खिलौना

* डाक महसूल एक आना *

छोटे छोटे लड़के लड़कियों के लिये बड़े मज़े की किताब

[छपकर तैयार है]

* दाम चार आने *

लड़कों का खेल

* डाक महसूल एक आना *

खेल और पढ़ना एकही साथ

[छप रहा है]

मिलने का पता--इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद

भाग २]　　　जुलाई सन् १९०१ ई०　　　[संख्या ७

इस संख्या में प्रकाशित विषयों की सूची

	पृष्ठ
(१) विविध वार्त्ता [ले० सम्पादक]	२१७
(२) रोशनआरा (उपन्यास) [ले० बा० कार्त्तिकप्रसाद]	२१९
(३) लखनऊ वर्णन [ले० कु० रघुनाथप्रसाद बी. ए. ...	२२५
(४) बाणभट्ट [ले० पं० गङ्गा प्रसाद अग्निहोत्री]	२२१
(५) कविकर्त्तव्य [ले० पं० महावीर प्रसाद द्विवेदी]	२३२
(६) शिक्षा (सचित्र) [ले० सम्पादक]	२३९
(७) साहित्य-समालोचना [ले० पं० श्याम-बिहारी मिश्र, एम. ए. और पं० शुकदेव बिहारी मिश्र, बी. ए.] ...	२४७
(८) निराश प्रेमिक (कविता) [ले० पं० किशोरीलाल गोस्वामी]	२५०
(९) फ़ोटोग्राफ़ी [ले० सम्पादक]	२५१

"सरस्वती" के नियम

१—"सरस्वती" का प्रकाश जहां तक सम्भव होगा प्रति अङ्गरेज़ी महीने के अन्त में होगा।

२—वार्षिक अग्रिम मूल्य ३) रु० डांकव्यय सहित है। एक संख्या का मूल्य पांच आना। बिना अग्रिम मूल्य के पत्रिका नहीं जायगी।

३—लेख, कविता, समालोचनार्थ ग्रन्थादि और बदले के पत्र तथा लेखादि सम्बन्धीय पत्र "सम्पादक 'सरस्वती', बनारस सिटी," के नाम से भेजने चाहिएं।

४—किसी लेख वा कविता के प्रकाश करने न करने, तथा लौटाने न लौटाने का अधिकार सम्पादक को होगा।

५—द्रव्य तथा प्रबन्ध और विज्ञापन सम्बन्धीय पत्र व्यवहार नीचे लिखे ठिकाने से करना चाहिए—मेनेजर "सरस्वती", इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद।

६—बा० नन्दलाल वर्मा, मेनेजर, फ्रेण्ड एण्ड कम्पनी, मथुरा, सरस्वती के एजण्ट नियत किए गए हैं। इस कारण उक्त बाबू साहब के पास भी ग्राहक गण सरस्वती का मूल्य जमा कर उनसे रसीद ले सकते हैं।

७—अश्लील विज्ञापन सरस्वती में नहीं छापे जाते हैं।

८—विज्ञापन की छपाई प्रति पंक्ति दो आना होगी।

९—यदि विशेष दिनों के लिये या विशेष स्थान में विज्ञापन छपवाना या अलग बँटवाना हो तो पत्र व्यवहार से मूल्य स्थिर हो सकता है।

१०—उत्तर के लिये टिकट भेजना चाहिए।

मेनेजर 'सरस्वती'

इण्डियन प्रेस, इलाहाबाद॥

लेखकों के लिये नियम

(१) जो लेख "सरस्वती" में छपने के लिये आवेंगे वे यदि सम्पादक को स्वीकृत होंगे तो छाप दिए जायंगे, अन्यथा लेखक के पास बैरङ्ग वा उसके डांक व्यय भेजने पर टिकट लगा कर लौटा दिए जायंगे।

(२) वेही लेख छापे जायंगे जो पूरे होंगे, अधूरे लेखों पर विचार न किया जायगा। परन्तु स्थान के अनुसार वे एक, दो वा अधिक संख्याओं में क्रमशः छापे जायंगे।

(३) इस पत्रिका में ऐसे राजनैतिक वा धर्म सम्बन्धीय लेख न छापे जायंगे जिनका सम्बन्ध वर्त्तमान काल से होगा।

(४) लेख एक पृष्ठ पर और स्पष्ट अक्षरों में लिखे हों। प्रथम पृष्ठ का ऊपरी आधा अंश सादा छूटा रहे, बांए हाथ की ओर चौथाई हाशिया रहे, अन्तिम पंक्ति के नीचे दो इञ्च के लगभग स्थान छूटा रहे और प्रति पंक्ति एक दूसरे से इतने अन्तर पर हो कि बीच में एक पंक्ति और लिखी जा सके।

(५) लेख लिखने में उन्हीं नियमों का पालन हो जिन्हें काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा ने सर्व-सम्मति से निश्चित किया है।

(६) जिन लेखों में चित्र रहेंगे उन चित्रों के मिलने का जब तक लेखक प्रबन्ध न कर देंगे तब तक वे लेख न छापे जायंगे। चित्र का व्यय यदि आवश्यक होगा तो सरस्वती के प्रकाशक देंगे।

(७) लेखों के घटाने बढ़ाने का सम्पादक को पूर्ण अधिकार रहेगा।

दानवीर श्रीमान् रायचन्द प्रेमचन्द जी

सरस्वती

सचित्र मासिक पत्रिका

भाग २] जुलाई १९०१ ई० [संख्या ७

विविध वार्त्ता

सुदर्शन मासिकपत्र के सुयोग्य सम्पादक ने मार्च की संख्या में यह प्रस्ताव किया है कि व्यास अम्बिकादत्त के स्मरणार्थ एक "व्यास पुस्तकमाला" नाम से पुस्तकावली प्रकाशित की जाय जिसमें हिन्दू शास्त्रों के अनुवाद छपाकरें तो एक पन्थ दे। काज हो जांय—इधर व्यास जी का स्मारक स्थापित हो जाय ग्रैार उधर जनसाधारण में हिन्दूशास्त्रों का प्रचार हो जाय। वास्तव में व्यास जी का स्मारक इससे उत्तम ग्रैार दूसरा नहीं हो सकता, क्योंकि उनके जीवन का विशेषांश मातृभाषा वा निज सनातन धर्म्म की सेवा ही में बीता था। अतएव उनके लिये ऐसाही स्मारक होना चाहिए जिसमें दोनों बातें मिली रहें। इस पुस्तकमाला के प्रकाश से मातृभाषा के भण्डार की पूर्ति ग्रैार धर्म्म विषयक ग्रन्थों का पूर्ण प्रचार हो जायगा, जिससे समय पाकर भारतवासियों को अपने वास्तविक धर्म्म का सच्चा ज्ञान हो सकता है, ग्रैार बहुत सी कुरीतियां ग्रैार कुविचार जो इस समय इनमें प्रचलित हो रहे हैं, क्रमशः दूर हो जांयगे। इन्हीं कारणों से हम सुदर्शन-पत्र सम्पादक के प्रस्ताव का हृदय से अनुमोदन करते हैं। वे इस पुस्तक-माला के प्रबन्ध के विषय में लिखते हैं कि "यदि इस कार्य्य को काशी नागरीप्रचारिणी सभा उचित रीति से सम्पादन करने में बद्धपरिकर हो तो उसे धार्म्मिक हिन्दू महाशयों से सहायता की पूर्ण आशा करनी उचित है।" हम इस प्रस्ताव से सहमत नहीं हैं। कारण इसका यही है कि सभा का सम्बन्ध धर्म्मसम्बन्धी विषयों से कुछ भी नहीं है ग्रैार इस पुस्तकमाला के सम्पादन करने में बिना उसमें हस्तक्षेप किए काम न चलेगा। अतएव इसका दूसरा प्रबन्ध होना उचित है। भारतवर्ष में इस समय ऐसी अनेक धर्मसभाएं वर्तमान हैं जिनके केवल नाम ग्रैार उद्देश्यों पर ध्यान देकर यह कहने में आता है कि यह काम उन्हीं को सैांपना चाहिए, पर जिनकी वास्तविक अवस्था को जानकर ग्रैार उनका पूर्ण अनुभव यह पाकर कि

केवल शुद्ध स्वार्थ को छोड़कर और उनमें कुछ नहीं है, यही सम्मति देनी उचित जान पड़ती है कि इन सभा समाजों और मंडलों से इस पुस्तक-माला का प्रबन्ध स्वतन्त्र होना उचित है। क्या सुदर्शन के सम्पादक एक छोटी सी कमेटी बनाकर और इस कार्य्य में अधिक सहायता देनेवालों को उसमें सम्मिलित करके इस कार्य्य को नहीं कर सकते?

***

उदयपुर से कुँवर जोधसिंह मेहता सम्वाद-वाहक पक्षियों के विषय में लिखते हैं कि—

"कबूतरों से तो बहुत दिनों से सम्वादवाहक का काम लिया जाता है परन्तु अब कौवों से भी यह काम लिया जाने लगा है। जरमनी के लोग कौवों को सम्वादवाहक का काम सिखाने लगे हैं। कहते हैं कि इस कार्य में उनको सफलता प्राप्त हुई है। युद्ध के समय कौवों से सम्वादवाहक का काम लेने में केवल इतना ही भय है कि कहीं ये अपना सिखलाया हुआ काम भूल कर दूसरे शिकारी पक्षियों के सङ्ग मिल न जावें और उनके साथ ये भी रणक्षेत्र में भोजन का आनन्द कहीं लूटने न लगें।

"बहुत से लोगों की सम्मति है कि युद्धकाल में मधुमक्खियों से भी पत्रवाहक का काम लेना चाहिए। कहते हैं कि इङ्गलिस्तान के पश्चिमी प्रान्त में कोई कृषक मधुमक्खियों से पत्रवाहक का काम लेने लगा है और उसमें वह कृतकार्य भी हुआ है। छत्ते से मधुमक्खी को पकड़ कर घर से अन्यत्र ले जाते हैं और उसकी पीठ पर एक कागज़ का टुकड़ा चिपका दिया जाता है जिसपर सुक्ष्म फोटोग्राफी (Microphotography) द्वारा बड़े सुक्ष्म अक्षरों में कुछ लिखा होता है। फिर वह मधुमक्खी छोड़ दी जाती है और वह उड़ती हुई वापस अपने छत्ते पर आने के लिये घर लैाट आती है। मधुमक्खी का लघु आकार होने से किसीका उसे मार्ग में देख लेना वा रोकना असम्भव सा है। और यही कबूतरों तथा कौवों की अपेक्षा मधुमक्खी से पत्रवाहक का कार्य लेने में अधिकतर लाभ है जो रणक्षेत्र के लिये बड़ा उपयोगी है।"

***

पहिली जनवरी १९०० ई० से लेकर ३१ दिसम्बर १९०० तक समस्त भारतवर्ष में ८८७ ग्रन्थ हिन्दी के प्रकाशित हुए, जिनमें से ५४८ पश्चिमोत्तर प्रदेश में, ११६ बङ्गाल में, ३१ मध्यप्रदेश में, ८५ बम्बई में, १०१ पञ्जाब में और ६ अजमेर-मेवार में। इन ८८७ ग्रन्थों में से २२७ कविता के, १२८ शिक्षा विभाग सम्बन्धी, ११७ भिन्न भिन्न विषयों के, ११३ संस्कृत-अनुवाद, ९९ धर्म विषयक, ४१ उपन्यास, २८ अंग्रेजी अनुवाद, २५ अन्य भाषा के अनुवाद, २३ सामयिकपत्र, २० विज्ञानगणित आदि, १९ उर्दू हिन्दी, १६ नाटक, १० चिकित्सा, ८ इतिहास भूगोल, ५ वेदान्त, ५ साहित्य और ३ जीवनचरित। इस अवस्था को देखकर हिन्दी के प्रेमीगण स्वयं जान सकते हैं कि हिन्दी की कैसी मन्द अवस्था है। इन पुस्तकों में से विशेष पुस्तकें ऐसी निकलीं कि जिन्हें पुस्तक कहना ही अन्यभाषा की पुस्तकों का उपहास करना है। विज्ञान तथा गणित आदि के २० ग्रन्थ निकले जिनमें अधिकांश स्कूली पुस्तकें और प्रश्नोत्तरिएं हैं। नाम लेने को भी एक ग्रन्थ नहीं है जिससे हिन्दी का गौरव हो सके। समस्त ग्रन्थों में से आधे से अधिक तो पश्चिमोत्तर प्रदेश में प्रकाशित हुए जो हिन्दी का वासस्थान माना जाता है, पर इस प्रान्त में हिन्दी के रसिक कितने हैं इसका अनुभव हमलोगों को बहुत अच्छा है। लेखकों में भी इतने महाशय हैं जो अँगुलियों पर गिने जा सकें और तिसपर विशेषता यह कि इन प्रसिद्ध लेखकों में से किसी एक ने भी दो चार प्रबन्ध लिखने के अतिरिक्त अपनी लेखनी को श्रम न दिया। यह अवस्था हिन्दी के लिये शुभ नहीं है। सामयिक पत्रों की संख्या २३ है। इसमें केवल त्रैमासिक, मासिक, तथा पाक्षिक पत्र सम्मिलित हैं। इन २३ में से १७ पश्चिमोत्तर प्रदेश में छपते

हैं। ये पत्र कौन कौन श्रीर कैसे हैं यह सब लोगों पर विदित है। हिन्दी के नाश करनेवालों श्रीर कवितादेवी के गले पर छुरी फेरनेवालों की संख्या ही अधिक है।

रेशन आरा

पहिला परिच्छेद

महानगरी दिल्ली में श्राज दिवाली की रात का महोत्सव है। कोई ऐसा हिन्दुश्रों का घर नहीं है जिसमें दीपावली की सजावट न हुई हो। जिधर देखो उधर ही जगमगा रहा है। मुसलमानों के घर में तो उत्सव का कोई चिन्ह नहीं है। हिन्दुश्रों में भी सबसे चढ़ बढ़ के दिवाली की सजावट राजा रतनचन्द के घर में है। उस समय रतनचन्द मानो हिन्दुस्तान भर के शासनकर्त्ता हो रहे थे। श्रबदुल्लाख़ाँ कुतुब-उल-मुल्क बादशाही प्रधान वज़ीर थे। सच तो यह है कि फर्रुख़शियर नाम मात्र के बादशाह थे। रतनचन्द वज़ीर के दाहिने हाथ थे। जितना काम काज था सबका भार वज़ीर ने राजा साहेब को सौंप रक्खा था। आज नीचे से ऊपर तक राजा का महल बिल्लौरी पात्रों में सुन्दर सुगन्धित चन्दन चमेली के तेल श्रीर काफ़ूरी बत्तिश्रों से देदीप्यमान हो रहा है। तृपैालिया पर श्रति चमकीली रंग बिरंगी रोशनी के चाँद सूरज जग मगा रहे हैं, जिनकी श्रोर निहारने से श्राँखों मे चकाचौंध लगती है। द्वारपर राजा के कर्मचारी हाथों में गुलाबपास श्रतरदान लिए श्राए हुए लोगों के ख़ातिर कर रहे हैं।

नगर में उत्सव का श्रीर विशेष कोई चिन्ह देखने में नहीं श्राता है। दर्शक रोशनी देख देख डरते हुए अपने अपने घरों को लैाट रहे हैं। उस समय सब लोग अपनी अपनी हथेली पर प्राण लिए रहा करते थे, क्योंकि कब किसके भाग में क्या है इसका खुटका प्रायः सबही के जी में लगा रहता था। जब से फ़र्रुख़शीयर तख़्त पर बैठा था, तब ही से नगर मे खून खराबा मचा हुश्रा था। इसीसे नगर में उदासी सी छा रही थी। बस जो लोग अबदुल्ला ख़ाँ के कृपापात्र थे वेही बेखटके थे। इसीसे राजा रतनचन्द के यहां आज दिवाली का त्योहार धूमधाम से मनाया गया है।

दुमहले के सजे हुए दीवानख़ाने में महफ़िल बैठी है, तायफ़े का नाच हो रहा है। राजा रतनचन्द मख़मली मसनद पर आराम से बैठे हुए थे कि कई एक नैाकर दौड़े हुए आके बोले—महाराज! स्वयम् अमीर-उल-उमरा कुतुब-उल-मुल्क बाहर खड़े हैं। यह सुनते ही राजा साहेब गीत सुनना छोड़ चट पट बाहर आ उपस्थित हुए। वज़ीर पालकी के अन्दर थे। रतनचन्द बाँया हाथ पालकी की छत्त पर रख श्रीर झुकके बड़े अदब से लम्बी सलाम करके बोले "ताबेदार को क्या खुशनसीबी है कि खुद हुजूर ताबेदार के ग़रीबख़ाने पर रैानक़ अफ़रोज हुए?" वज़ीर पालकी के बाहर निकल रतनचन्द के कंधे का सहारा ले मकान के अन्दर गए श्रीर बोले "मुझे तुमसे तख़लिए में कुछ कहना है"।

जिस दालान में महफ़िल थी वहां न ले जाकर एक निराले स्थान में राजा वज़ीर को लिवा ले गए। वज़ीर को बैठा राजा दस्तबस्तः सामने खड़े रहे।

वज़ीर ने कहा—"रतनचन्द! इस वक़्त मेरा कलेजा टुकड़े टुकड़े हो रहा है। जो तकलीफ़ मुझे हो रही है ज़बान को ताक़त नहीं है कि मैं उसका तुमसे बयान करूं"।

राजा ने मुस्करा के अर्ज़ की—"हुज़ूर को तो दो दिन भी आराम से नहीं बीतते, न जाने फिर किस खुशनसीब के तेग़ेनज़र ने हुज़ूर के जिगर पर ज़ख़म पैदा किया है।"

श्रौरतों के इश्क के लिये वज़ीर हमेशः बदनाम थे। नित्य नए प्रेम में फंसा करते थे, नित्य नई प्रेमिका की खोज रहा करती थी। वज़ीर के चरित्र को राजा खूब समझे हुए थे, इनका

कलेजा नित्य हज़ार टूक हो जाता और चट मरहम पट्टी करके जुड़ भी जाया करता था। उनकी बात सुन राजा कुछ चकित या विस्मित न हुए, केवल इतना ही बोले "अब किसका नसीबा जगा?"

वज़ीर अपनी छाती पर हाथ रख एक ठण्डी सांस खींच के बोले—अब की सहज सी बात नहीं है। बेतरह चोट खाई है। कौन है, क्या नाम है, कुछ भी पता नहीं है। फ़क़त इतना ही मालूम है कि है वह तुम्हारी परोसिन।

वज़ीर की बात सुन राजा चौंक और जी में कुछ डर कर सोचने लगे किसका भाग फूटा। दिखलौआ हँसी हँस के वे बोले—मैं तो नहीं जानता, मेरे मकान के नज़दीक कौन सी हूर रहती है, मुझे तो उसकी कुछ भी ख़बर नहीं है"।

अबदुल्ला ख़ाँ बोले—भला तुम्हें तरजुमा करने से फ़ुरसत कहां कि हूरों की खोज रक्खो! मेरे साथ आओ। तुम्हारे घर के पिछवाड़ेवाली गली जहां से दिखाई देती है वहां मुझे ले चलो।

राजा रतनचन्द वज़ीर को साथ ले तिखने पर चढ़ एक छोटी सी कोठरी में घुसे। उसके अन्दर जा वज़ीर ने सामने का दिया बुझा दिया। इस पर राजा ने वहां के सब दिए बुझा दिए। जब ख़ूब अँधेरा होगया तब धीरे धीरे वज़ीर ने एक झरोखा खोला। मार्ग की दूसरी ओर एक तिखना मकान था, उसमें दीपावली नहीं थी। कदाचित् किसी मुसलमान का घर होगा। उस मकान का भी एक झरोखा खुला हुआ था। उस झरोखे में एक नवयौवना सुन्दरी खड़ी थी। एक एक बेर राजा रतनचन्द के मकान की सजावट निहारती थी, जिससे असंख्य प्रदीपों का उजेला उसके मुखचन्द्र पर पड़ता था। उस समय वज़ीर ने अँगुली उठा के राज रतनचन्द से कहा—"वह देखो!"

रतनचन्द ने भी उसकी ओर देखा। जिस समय प्रदीपों का उजेला उसके मुँह पर पड़ता था तो वह चट पीछे हट जाया करती थी। इससे बहुत देर तक राजा ने उसे नहीं देख पाया, पर जो देखा उससे वज़ीर के जी की बेकली समझ गए। वह एक महीन बहुमूल्य ओढ़ना ओढ़े हुए थी जिसकी कोर पर मोतिओं की झालर टकी हुई थी। उसके वस्त्र ऐसे महीन थे कि देह पर सट जाने के कारण उसके अंग प्रत्यङ्ग की बनावट साफ़ मालूम होती थी। गोल चमकीला चेहरा और सुन्दर ललाट पर घूंघरवाली लटें ऐसी शोभा दे रही थीं मानो फणधर के बच्चे चन्द्रमा पर मचल रहे हैं। धनुषाकार सुन्दर भौंहों के तले मृगशावक के समान श्याम कटीले चञ्चल चपल लोचन बड़े बड़े ऋषि मुनियों के मन को चलायमान करने में सक्षम थे। गोल दोनों गालों पर कभी गुलाबी, कभी श्वेत झलक शोभा दे रही थी। कुन्दरु से लाल लाल पतले ओठ माणिक का भ्रम डालते थे। सिख नख से सुन्दर सवाँरी मानो रूप के समुद्र सी वह रमणी कुछ लम्बी आकार की, विधाता की पूर्ण कारीगरी का एक अच्छा नमूना बन कर वहां खड़ी थी।

राजा रतनचन्द ने देख कर कहा—आज मेरी आँखें सफल हुईं। आप शाहों के शाह हैं, यह रूप का समुद्र आपही के लायक है। शायद शाही महल में भी इस जोड़ को कोई बेगम न होगी।

वज़ीर ने कहा—मैं इस तरफ़ से जारहा था। मेरी निगाह इस दरवाज़े पर पड़ी। सिवाय इसके और इसके बारे में मैं कुछ भी नहीं जानता। तुम्हारे मकान के सामने है, इसका पूरा हाल तुम्हें जानना चाहिए। जो हो, अब तो इसके हाथ मेरी ज़िन्दगी है। अगर मिली तो तो ठीक ही है, नहीं तो इसके ऊपर मैं न्योछावर हो जाऊंगा।

रतनचन्द ने कहा—ऐसा न कहिए। कुल रियासत आपही के कदमों से लग रही है, आप इतना मत घबड़ाइए।

वज़ीर ने कहा—अगर मुझमें कुछ भी हुकूमत है तो आज इस पर मैं जान निसार करूंगा।

रतनचन्द ! तुम्हारे हाथ मेरी ज़िन्दगी है, जल्द कहो यह मुझे क्योंकर मिलेगी।

रतनचन्द ने सिर झुकाके कहा—दुनियां में ऐसी कौन सी चीज़ है जो आपको नहीं मिल सकती। पर ज़रा मुझे वक़्त दीजिए तो मैं इसका पता लगाऊं।

वज़ीर ने कहा अच्छा, मैं यहां ठहरा हुआ हूं। जहां तक हो जल्द इसका पता लगा लाओ। पर इतना खूब याद रखना कि इसके बिना मेरा कलेजा जला चला जाता है। जब तक इसे कलेजे से न लगाऊंगा मेरी बेचैनी न मिटेगी।

रतनचन्द अपने दोनो हाथों को बगल तले दबा सिर नीचा कर वज़ीर से रुख़सत हो नीचे आए। उधर उस अंधेरी कोठरी में बैठे वज़ीर उस रूप के समुद्र को टकटकी बाँधे निहारते रहे।

जब रतनचन्द लौट आए, उस समय वज़ीर बैठे ठंढी साँस भर रहे थे। रतनचन्द को आते देख बोले "जल्दी कहो क्या पता लगा"।

रतनचन्द ने कहा, विशेष और तो कुछ पता नहीं लगा है, बस इतना ही मालूम हुआ है कि वह दिल्ली की रहनेवाली नहीं है, अभी कुछ दिनों से यहां आई है। कुछ दिन हुए उसके शौहर ने यह घर मोल लिया है। नौकर मजदूरिनें भी बहुत नहीं हैं और न उसका पति सदा घर में रहता है। यह भी नहीं मालूम कि वे लोग क्या करते हैं, और न वे ज्यादा किसीसे मिलते जुलते हैं।

वज़ीर ने कहा—यह तो अच्छी ही बात है। जो यहां का कोई अमीर उमराव होता तो बड़ा बखेड़ा मचता। पर मैं तो तौभी उसे न छोड़ता, जान जाय तो जाय, पर उसके पाने की उम्मैद मेरे जी से न छूटेगी। जैसे बने तुम उसे मेरे पास लिवा लाओ।

रतनचन्द ने डरते डरते कहा—"यहां ?" वज़ीर जो जुदाई को सह नहीं सकता था, बोला "इसमें डर क्या है ?"

रतनचन्द ने कहा,—यह भी तो हुजूर ही का घर है। पर यह ऐसी नाज़नीन के लायक नहीं है। दुसरे परोस का वास्ता है। शायद कुछ बखेड़ा हो। इससे मेरा कहना यह था कुछ दूर होता तो अच्छी बात थी।

ज़रा सोच के वज़ीर ने कहा अच्छी बात है। अकेली जगह यह मुझे मिल जाय तो कुछ दिन इसे लेके कहीं मैं रहूं और किसी से न मिलूं। जमुना किनारेवाले बाग़ मे जाता हूं। बस, वहीं उसे पहुंचवा दो।

रतनचन्द बोले—जो हुक्म। ताबेदार की एक अर्ज़ और करनी है; वह यह है कि मेरे नौकर इस काम में बहुत होशियार नहीं हैं। जो इस काम के लायक चुस्त व चालाक कुछ लोगों को आप भेजदें तो काम चट पट सरोतर उतर जाय।

व०—अच्छा अभी हम अपने खोजों को भेज देते हैं। अब देरी नहीं सही जाती।

सीढ़ी उतरते उतरते वज़ीर ने कहा, राजा रतनचन्द ! मुझे तुमसे वही उम्मेद था, तुमने वैसीही मेरी मदद की।

रतनचन्द भी बड़ा हाज़िरजवाब था, चट बोला—भला, मैं एक नाचीज़ ताबेदार हूं, मुझसे भला आपको क्या मदद मिलेगी और खुदा के फ़ज़ल से आपको किस बात की कमी है कि किसीकी मदद मांगेंगे ?

द्वार पर पहुंचके वज़ीर ने कहा—जो तुम्हारे पड़ोस में वह मिली है इससे मैं तुमपर बहुत खुश हूं।

रतनचन्द कमान से झुकके दस्तबस्ता हो बोले—हुजूर ! जो मुझ नाचीज़ पर खुश हैं तो बहुत दिनों से ख़ाकसार की एक आरज़ू है उसे पूरा कर दें।

पालकी पर चढ़ते चढ़ते वज़ीर ने कहा—उन्नाव परगने की सनद चाहिए ? अच्छा कल सनद लिखालाना, मैं मोहर दस्तख़त करदूंगा।

दूसरा परिच्छेद

आधी रात का समय है। दीपावली बुझगई है। अँधेरे मे जमुना बह रही है। उसी अंधेरे में वज़ीर अपने बाग में उदास हो चेहलकदमी कर रहे हैं।

अनगिनत तारे की और किनारे के पेड़ों की छाया जमुनाजल में तिलमिला रही है। जल का प्रवाह बेखटक बह रहा है, बहाव का कल कल छप छप शब्द सुनाई दे रहा है।

वज़ीर के ऐशबाग़ में अँधेरा खूब हो रहा है। उसी घने अँधेरे मे एक ऊंचा महल खड़ा है। महल के बाहरवाले छापदार बरिन्दे मे जहां एक भी चिराग न था वज़ीर चेहलकदमी कर रहे थे।

चार कहार एक पालकी कंधे पर उठाए बाग़ के अंदर चुप चाप आए। पालकी के आगे पीछे दस बारह हथियारबंद सिपाही साथ थे। पालकी के देखते ही वज़ीर मकान के अंदर गए।

दरवाज़े पर पालकी के पहुंचते ही, एक बुढ़ी मजदूरिन वहां आ उपस्थित हुई और द्वार खोल पालकी को भीतर लिवा ले गई।

रक्षकों का सरदार, जहां वज़ीर गए थे उसी ओर गया। वज़ीर वहां एक कोठरी में खड़े थे। इसे देख उन्होंने पूछा "क्यों अख़तर, कोई ज्यादः बखेड़ा तो नहीं हुआ?"

ख़ोजा ने हाथ जोड़ के कहा "जी नहीं हुज़ूर, उस घर में ज्यादः लोगों की भीड़ भाड़ नहीं थी। ज्योंहीं मैंने बेगम साहेब से अर्ज़ की त्यों ही वे पालकी पर सवार होगईं"।

"क्या ख़ाविन्द घर में मौजूद न था?"

"जी नहीं! अगर वह होते तो बखेड़ा ज़ुरूर होता। पर हुज़ूर ने जैसा हुक्म दिया था, उससे यों ख़ाली हाथ हमलोग शायद न लैाट सकते"।

वज़ीर ने कहा, "अच्छा, जाओ"। खोजा चला गया। वज़ीर किवाड़ बन्दकर कई एक कोठरियों में होके और दबे पांव एक दूसरी किवाड़ी धीरे से खोल अन्दर गए। उनके अन्दर जाते ही आप-से आप किवाड़ धीरे से बन्द होगए।

उस रमणी के सिवाय जिसे अवदुल्लाख़ां ने बुलवाया था, उस घर में और कोई न था। वह भैाचक सी चारो ओर निहारने रही थी।

वह कमरा बहुत लम्बा चैाड़ा और सजा हुआ था। सोने चांदी की जंज़ीरों में नीले, पीले, लाल, गुलाबी, सुफ़ेद झाड़ों में धीमी धीमी रोशनो हो रही थी। ईरानी नमदा और बहुमूल्य गलीचा बिछा हुआ था, जिसपर कहीं मख़मली मसनद लगी हुई थी; कहीं लदाख़ी भेड़िओं की अति कोमल खाल, कहीं बुख़ारे की बिनी हुई बहुमूल्य रेशमी सुजनियां बिछी थीं। दालान के एक ओर छोटा सा नकली उपवन बना हुआ था। सुन्दर तमाल के वृक्ष और अंगूर की टट्टिओं के कुंज जिसके बीच में बिल्लौरी हौज़ में चीन देश की रङ्गीन मछलियां किलोल कर रहीं थी, अंकित थे। एक ओर एक जड़ाऊ परी खड़ी थी, जिसके हीरे के दांत, नीलम की आँखें, सोने की बांहें थीं; इसके मुह से फुहारा छूट रहा था। रोशनी की झलक से जल की धार में रङ्ग बिरङ्गी ज्योतियां निकल रही थीं, और अति सूक्ष्म जलधार बिल्लौरी हौज़ में धीरे धीरे गिर रही थी। उस दालान की छत्त शीशों से मढ़ी हुई थी। दीवारों पर दिल्ली के नामी चित्रकारों के बनाए हुए चित्र लटक रहे थे। इस सजावट को देख नवागत स्त्रीरत्न के मुख पर मारे लाज के लालिमा सी छा रही थी।

पहिले जब स्त्री उस घर में आई तब वह भैाचक सी हो गई, क्योंकि ऐसी सजावट बादशाहों के महल में होनी भी सहज नहीं है। जिस समय अवदुल्ला ख़ाँ घर के अन्दर आए, उसके आने की उस स्त्री को कुछ भी ख़बर न हुई। वह घर के चारों ओर निहार ही रही थी, कि एकाएक उसे बज़ीर दिखाई दिए। उसे देख चैांक और डर के वह बोली "तुम कैान हो?"

वज़ीर ने अपनी छाती पर दोनों हाथ रख के मुस्करा कर कहा—मैं खूबसूरती का गुलाम हूं। तुम सी खूबसूरत मैंने दूसरी नहीं देखी इससे मुझे अपना गुलाम समझो। लोग मुझको अबदुल्ला ख़ाँ बादशाह का वज़ीर कहते हैं।

वज़ीर ने सोचा था मुझे बादशाह का वज़ीर सुनके वह चकित हो मेरा सन्मान करेगी। पर उसने यह सब सुन धीरे धीरे कहा, "कुछ दिन हुए मैं हिन्दुस्तान में आई हूं, मैंने अभी तक किसीका नाम भी नहीं सुना है। पर मुझे यहां कैान ले आया? मैं तो यह जी में समझी थी कि मैं अपने शैाहर से मिलने चली हूं"।

इसके जवाब में अबदुल्ला ख़ाँ ने कहा, "जहां तुम थीं क्या तुम्हारे शैाहर वहां न थे?"

यह सुन वह अबला उसकी ओर गरदन उठा एक बेर देख कर बोली, 'क्यों तुम मुझसे ऐसा पूछते हो? क्यों मुझे यहां बुलाया है? मेहरबानी कर मैं जहां थी वहीं मुझे पहुंचवा दो"।

अबदुल्ला ख़ाँ बोले, "इसे अपना ही घर माने। और अपनेको इस घर की मालिकिन जाने। तुम्हें यहां डर काहे का है? मैं तो तुम्हारा बिना दाम का गुलाम हूं। जो मेरे कहे का एतबार न हो यह देखो"। यह कह बादशाह का वज़ीर, हिन्दुस्तान भर का मालिक दोनों हाथों को उस स्त्री के चरणों की ओर पसार आप उसके चरणों पर गिर पड़ा।

डर से धड़कते हुए कलेजे से वह स्त्री पीछे को हट गई। बोली "अरे पापी! यह क्या कर रहा है? मेरे शैाहर के रहते मैं आज़ाद नहीं हूं। जिन बातों के सुनने का पाप है, क्यों ऐसी बात मुझे सुना रहा है?"

वज़ीर उठ खड़ा हुआ—"जब तक मैं चाहूं बादशाह को बैठाए रहूं और जब चाहूं तब दिल्ली के तख्त पर से उसे उतार दूं। अबदुल्ला ख़ाँ को अपने पैरों पर पड़ा देख जो औरत अपने को खुशकिस्मत न माने उसका सा बदकिस्मत दुनियां में दूसरा नहीं है। पर मैं तुम्हें दोष नहीं दे सकता, क्योंकि इस शहर में तुम्हें आए अभी बहुत दिन नहीं हुए हैं। प्यारी! जिस वक्त से मैंने तुम्हें देखा है, उसी घड़ी से मेरा कलेजा तड़फ रहा है। जब तक तुम्हें छाती से न लगाऊंगा तब तक वह ठण्ढा न होगा। अब मुझे बचाओ, अब देर न करो।" यह कहते हुए वज़ीर ने उसका हाथ पकड़ लिया। स्त्री ने कहा मेरा हाथ छोड़ो नहीं तो मैं चिल्लाती हूं। वज़ीर ने हँसके कहा "तुम्हारे नाज़ुक गले में चोट लगेगी, इससे मैं तुम्हे चिल्लाने से रोकता हूं, नहीं तो मुझे कोई डर नहीं हैं। तुमसे पहिले न जाने कितनी सुन्दरी स्त्रियां इसी दालान में चिल्ला चुकी हैं जिसका नतीजा कुछ भी नहीं हुआ है। हज़ार चीख़ो, घर से बाहर आवाज़ ही नहीं जाती। यह मेरा घर है, मुझे यहां किसी बात का डर नहीं है। भला सोचो तो सही यहां आके कौन तुम्हारी मदद कर सकता है?" ऐसा कह वज़ीर ने चाहा कि उसका हाथ पकड़ कर खींचे कि घर के अन्दर का द्वार हिला और किसी मनुष्य का कण्ठस्वर सुन पड़ा—"अरे नीच छोड़ औरत का हाथ"। गुस्से से भरे क्रोधवाक्य को सुन, वज़ीर चकित और कुपित हो उसी ओर देखने लगा। अभी तक वह औरत बहुत ज़ोर से चिल्लाई नहीं थी, अब हाथ छुटते ही और तीसरे मनुष्य की आवाज़ सुन वह भी उसी ओर घूमकर देखने लगी और उस नए पुरुष को आते देख रुद्धस्वर से चीख उठी, और थर थर कांपने लगी।

नवागत मनुष्य ने उसकी ओर देखके इतना ही कहा, "रोशन आरा!"

स्त्री चकित हो तुरन्त चुप हो गई। वज़ीर ने देखा कि जितनी किवाड़ियां बन्द थीं सब ज्यों की त्यों बन्द हैं, कहीं से अन्दर आने का रास्ता नहीं है। परन्तु क्रोध में भरकर उसकी ओर झपट के बोला, "तुम कौन है। जी?"

उसने उत्तर दिया "अभी तो तुम्हें पाप कर्म्म से रोकने वाला"।

वज़ीर ने फिर कहा, "कौन है बाहर, इस बदज़ात का पकड़ के बांधो" ।

उस मनुष्य ने पहिले की भांति कहा, "वज़ीर साहेब, ज़रा और चिल्लाकर बुलाइए। औरत का शब्द तो बाहर जाही नहीं सकता, तुम तो मर्द हो, ज़रा चिल्ला के देखो तो सही, शायद तुम्हारा शब्द बाहर तक पहुंचे" ।

तब वज़ीर को याद आया कि जिस कौशल से घर की दीवार बनी है, चाहे कितना ही चिल्लाओ, भीतर की आवाज़ बाहर न जायगी। और कुछ न कह द्वार खोल वह बाहर जाया चाहता ही था कि चट उस मनुष्य ने वज़ीर का हाथ पकड़ कर उससे कहा—अबदुल्ला खां ! इतने उतावले न होओ। जब मेरा जी चाहेगा तब द्वार खोलूंगा। अभी आप घबरावें नहीं।"

अबदुल्ला ख़ाँ अच्छे बलवान थे। बलपूर्वक अपना हाथ छुड़ाया चाहते थे कि उसने चट उठा के उन्हें गलीचे पर दे मारा और पटक कर छाती पर चढ़ कमर से कटार निकाल वह वज़ीर से बोला—"इसी घर में न जाने तुमने कितनी स्त्रियों से पापकर्म्म किया है, ज़रा याद तो करो। इससे इसी घर में उन पापों का प्रायश्चित्त होना चाहिए। अब इसी कटार को तुम्हारी कोख में गोपता हूं, देखूं तो सही तुम्हें कौन बचाता है ?"

तब तो अबदुल्ला ख़ाँ मन ही मन विचारने लगा कि उसके किसी शत्रु ने उसके प्राण लेने को इसे भेजा है। मृत्यु को सामने खड़ी देखने पर भी वह न डरा और अपने मारनेवाले के आगे न गिड़गिड़ाया और न कुछ बोला। इसका जन्म अजमेर के प्रसिद्ध सैयद घराने में हुआ था जिसमें कभी कोई कायर उत्पन्न नहीं हुआ था। ज़ोर दिखाना व्यर्थ जान वज़ीर उसके मुंह की ओर देखने लगा।

मारनेवाले को देख यह नहीं मालूम होता था कि वह हत्यारा नरघाती है। परदेशियों सा वह भी था—लम्बा कद, महीन कपड़े के अन्दर से गठीली बोटी झलक रही थी। सिर के बाल और मूंछें कुछ पीलापन लिए, बड़ी बड़ी चमकती आँखें इस समय मारे क्रोध के बाहर निकली पड़ती थीं, नथुने फड़क रहे थे। उस कड़ाई में वज़ीर को दया का कोई चिन्ह न दिखाई दिया, और न नरघाती सा पिशाची लक्षण ही देख पड़ा। बस, चुपचाप पड़ा वह अपनी मृत्यु की बाट देखता रहा। पर वह अबदुल्ला ख़ाँ को छोड़ के उठ खड़ा हुआ और बोला—ले उठ खड़ा हो और जो जीने की जी में लालसा हो तो मैं जो कहता हूं सुन।

मारे ग्लानि और क्रोध के वज़ीर भीतर ही भीतर जल रहा था। बिना कुछ बोले वह उठ खड़ा हुआ। उसके घातक ने अपने कपड़े के अन्दर से कागज़, कलम, दवायत निकाल कर कहा"—मैं जो कहता हूं उसे इस कागज़ पर लिखना होगा। तुम अपने नौकरों के नाम लिख दो कि मुझे और इस औरत को बाहर जाने में कोई रोक टोक न करे।

वज़ीर ने कहा—यह औरत तुम्हारी कौन है ? यह तुम्हारे संग जाने में राज़ी है वा नहीं, यह मैं क्योंकर जान सकता हूं ?

उसने कहा यह तुम्हें जानने की कोई ज़रूरत नहीं है और न इस बारे में तुम कुछ कहो, सिर्फ़ जो मैं कहूं सो करो।

वज़ीर ने कहा मैं न लिखूंगा।

"तो मरो" यह कह फिर उसने वज़ीर की छाती पर कटार बैठाई। कटार की नोक लगने से कपड़े में खून का दाग आ गया। चोट खाकर वज़ीर बोला "अच्छा लिख देता हूं"।

जैसा उसने कहा वैसा ही वज़ीर ने लिख दिया। जब सब लिख गया तब उसने कहा "तुम्हारी अंगुली में जो मोहरवाली अंगूठी है उसे उतार दो"।

वज़ीर ने कहा यह तो नहीं दे सकता, क्योंकि इसमें बादशाह का नाम खुदा हुआ है"।

उसने कहा "मैं कोई चोर उचक्का नहीं हूं। मुझे इसे लेना नहीं है, इस वक्त मुझे इसकी ज़रूरत है, फिर तुम्हें लैाटा दूंगा"।

वज़ीर ने बिना कुछ कहे अंगूठी उतार कर दे दी। उसे ले उसने वज़ीर की पगड़ी उतार उसके द्वारा वजीर का हाथ पांव बांध डाला। वज़ीर ने कहा "जो जो तुमने कहा मैंने किया, अब मेरी क्यों बेइज़्ज़ती कर रहे हो?"

उसने हँस कर कहा—"भला मैं आपका अपमान कर सकता हूं? होश आने के लिये ज़रा आपको तकलीफ़ देता हूं। न जाने आपका दिल फिर जाय। शायद जाते देख दी हुई चीज़ों को लैाटाना चाहें।

मारे क्रोध और अपमान के वज़ीर बिकल हो बल दिखाने लगे। परन्तु उनको बांधनेवाले मनुष्य ने कहा, "वजीर साहेब! क्यों ताकत दिखा कर अपने नाज़ुक बदन को तकलीफ देते हैं?" और तब उसने उन्हें पकड़ कर, उनके दोनो हाथ पांव खूब कसके बाँध डाले। तब तो वज़ीर को यह ताकत भी न रही कि उठ कर खड़े हों। तब उसने उसे चिढ़ाने के लिये कहा "अबदुल्लाखां, कुतुब-उल-मुल्क, वजीर-आलम! तुम दिल्ली के बादशाह के मालिक हो, पर तुम्हारी चाल चोर और जानवरों की सी है। जो जानवर की तरह तुम्हें मारूं तो मुझे कुछ पाप नहीं है, पर इतनी जल्दी तुम्हारी छुट्टी नहीं है। अभी बांधने में तुम अपनी बेइज़्ज़ती मानते हो, पर कैदी की हालत में तुम्हें मुद्दत बिताना है। तब कैद में बैठ मुझे याद करना और अपने किए कामों को याद कर के रोना"।

वह स्त्री पुतली सी चुपचाप छिपी हुई एक कोने में खड़ी थी, और जैसी डरी हुई चिड़िया अजगर को देखती है, वैसीही वह उसे देख रही थी। उसने उससे कहा "रोशन आरा, मेरे साथ आओ"।

रोशनआरा कठपुतली सी उसके पीछे हो ली। जब वे लोग घर के बाहर निकल आए तब फिर किवाड़ बन्द हो गए। भीतर अपने सजे हुए गृह में वज़ीर साहब बँधे पड़े रहे। [क्रमशः]

लखनऊ वर्णन

राजति आर्यावर्त्त देश
उत्तर महँ धरनी जोई।
उत्तम नगरन मांहि जासु
गणना नित ही नित होई॥
लक्ष्मणपुरी सुहावनि पावनि
मनभावनि सबही के।
मोद बढ़ावनि सुख सरसावनि
दुख बिसरावनि ही के॥
चित्त खेद हठि दूरि पठावनि
परम लुभावनि जी कों।
चिन्तित व्यथित उदास जनन कहं
कैातुक कारिनि नीकी॥
श्रीयुत लक्ष्मण बुद्धि बिचक्षण
रच्यो तोहि रजधानी।
तातें अटल रहहि तव कीरति,
यह निहचय हम जानी॥
राजस्थान सुदेस अवध को
फैज़ाबाद रह्यो जो।
सो पुर छाड़ि नवाब चाव सों
तो कहं आनि गह्यो जो॥
यहि गद्दी को अन्तिम राजा
वाज़िद अली भयो है।
तेहि ठहराइ अयोग्य राजा धुर
धरि अङ्गरेज़ लयो है॥
बेली गारद और जहां तहं
भईं अनेक लराई।
पै बिधि अङ्कित भाल रेख तें
किए कछू न बसाई॥
अवधदेश की 'हाई कोर्ट' हूं
याही पुर मधि भ्राजै।
और अनेक न्याय के आलय
विरचित अति छबि छाजै॥
सीतापुर बङ्की हरदोई
अरु उन्नाव विराजैं।

तिनके बीच थान नव सुन्दर
देखि अमर पुर लाजैं ॥
अमल प्रतीत धवल जल गोमति
बहत मन्द गति सोहै ।
भांति भांति के तटों भवन की
सोभा निमि मन मोहै ॥
सुघर छबीले जलयानन पर
नागर चढ़ि छबि छावैं ।
होड़ लगाइ नाव दौड़ावैं
तुरगन चाल लजावैं ॥
कहुं मतङ्ग कलोलत चिहरत
न्हात फुहारत पानी ।
कहुं काठ कहुं वस्तु विविधि विधि
भरीं नाव सुखदानी ॥
कहुं बाटिका सोहैं तट पर
बिकसित फलित मनोहर ।
बिम्ब परत जल मांहि होत भ्रम
मनहुं दूसरी सोदर ॥
शाहबाग़ अरु बाग़ बनरसी*
आ.मबाग़ बिराजत ।
बाग़ सिकन्दर बहुरि जमुनिहा
लखे ताप जिय भाजत ॥
इन सब बाग़न में अति छबि सों
बाग़ बनरसी* सोहै ।
निरखि जासु सोभा रुचिराई
नन्दन बन मन मोहै ॥
अलि लोलुप लहलही लतन पर
लसत लेत इमि स्वादू ।
मानहु रसिक रमत युवतिन मधि
भरो अमित अहलादू ॥
कीर कपोत मयूर लवादिक
चहचहात तरु डारन ।
मनहुं लखाइ रहे सब जग कहं
बन निवास सुख कारन ॥

कहुं बधिक गन बिहँग गहन हित
फिरत लगावत घाता ।
दुरजन बस परि गुनहु कहत जनु
होंहि कबहुं दुखदाता ॥
बायु बेग सों गिरे कहुं तरु
मूल सहित इमि दीसैं ।
मनहुं छाड़ि लघु जनन बिपति गन
परैं गुरुन के सीसैं ॥
गुरु बिटपन तट अन्न वृक्ष
सब लखियत दीना ?
कलि धनीन ढिग होत यथा
सज्जन अति छीना ॥
हरे भरे जनुढरे चारु बहु
बिटप बितान बिराजैं ।
बाल समय की सीख युवक कहं
योहीं सुखसों साजैं ॥
लान अनेक सोधि कै रोलर
सींचत लै जल चारू ।
यथा बाल ताडन लालन में
उन्नति केर पसारू ॥
बीथी सुघर अलंकृत बहु बिधि
चौकी चहुं दिसि सोहैं ।
बीच मनोहर भवन बिराजै
मूरति अति मन मोहैं ॥
कुसुम दरस संवत्सर तहँ
व्यक्ति अमित जुरि आवैं ।
लेडी इंगलिश और पारसी
गहिरी धूम मचावैं ॥
कर में कर दै दम्पति बिचरैं
मिसैं जहां तहं डोलैं ।
घेरैं तिन्हैं रिझावनहारे
मरम चाह के खोलैं ॥
धरनी हरित सोई थल जल मय
तिय सरोज तिमि सोहैं ।
अलिगन सुन्दर रसिक गुंजारैं
बिधुबदनिन मुख जोहैं ॥

---

* बनारसी

चौंसठ हाट ललित ग्रति रूरे
मंडी छप्पन जानहु ।
चौकहु हज़रतगंज ग्रमीनाबाद
सदर गुरु मानहु ॥
फ़ैशन नूतन ग्रौर पुरानो
इन सब में लखि लीजै ।
चौक जाय साही को ग्रनुभव
पूरन मन सों कीजै ॥
ठसक नवाबी लम्बे पट्टे
चूड़ीदार दुटंगा ।
कान फुरहरी हाथ रुमलिया
जूता रंग बिरंगा ॥
बने लिफाफा ऊपर चितवैं
फूंकहु ते उड़िजावैं ।
घरमें बेगम नंगी बैठी
ग्राप नबाब कहावैं ॥
दिवस बटेर पतंग लड़ावैं
देइं उड़ाइ वसीका ।
बेंचि कसीदा जब लै ग्रावैं
होइ पेट को ठीका ॥
बहुत महाजन ग्राफ़त मारे
देइं 'रुपैया' इनको ।
डिगरी में वे पावैं केवल
चूल्हा चौका तिनको * ॥
जहां कुंवरि श्रीयुत सुनि पावै
झपटैं तुरत रिझावैं ।
करि निकाह धन खीस करैं सब
पीछे ताहि खिझावैं ॥
फाटकहू पर देखि गाहकै
ठग दलाल चट दौरैं ।
जानि गंवार घेरि सब चहुं दिसि
बांह पकरि झकझोरैं ॥
स्वान गीध जम्बुक मौकुलि गन
देखि शवहिं जिमि टूटैं ।
तिमि जूटैं गाहक पै ये सब
बड़भागी जे छूटैं ॥
ऊंचे महल गली सकरी ग्रति
कोठे नरक-कि-दूती * ।
सबक पढ़ाइ छीनि धन सरबस
पीछे मारैं जूती ॥
बड़ी दूरि लौं पांति दुकानैं
वस्तु ग्रनेक बिराजैं ।
मनि मानिक ग्ररु हाटक चांदी
घाच क्लाक छवि छाजैं ॥
हजरतगंजहि फिसन ग्राधुनिक
देखि परै सब ठौरैं ।
कोट पैंट सों डटे महाशय
चढ़े बाइसिकिल दौरैं ॥
तहां दूकानै ग्रंगरेजन की
सौदा बेचैं नीके ।
दुगुने तिगुने दाम परैं पै
होहिं ग्रतिहि वे जीके ॥
तरहदार ग्रंगरेजी बाना
इहां मिलै ग्रधिकाई ।
नाहिन हजरतगंज हाट
लन्दन कौ धौं उठि ग्राई ॥
हाट ग्रमीनाबाद रुचिर ग्रति
सब विधि के जन ग्रावैं ।
पुराचीन ग्ररु नूतन फेशन
दोऊ इत मिलि जावैं ॥
इका फिटन बाइसिकिल टमटम
ग्रमित पयादे जावैं ।
सांझ समय को भीर इहां की
देखतही बनि ग्रावैं ॥
वस्तु ग्रनेक भांति की उत्तम
धरी दुकानन माहीं ।
ग्राइ ग्रनेक खरीदैं बेचैं
हाट सराहत जाहीं ॥

* तृण का बना हुआ ।

* Messengers of hell ग्रर्थात् वेश्या

सदर माहिं कारे गोरन की
पलटन अति अधिकाई ।
तहां सफाई अधिक रहै कछु
उपमा कहि नहिं जाई ॥
बेचनआरे उतरे कपड़े
गोरन के लै लेहीं ।
साहेब बनै किरानिन के सिर
झारि पोंछि मढ़ि देहीं ॥
पिए बरांडी झूमत घूमैं
लड़खड़ात कहुं गोरे ।
देसी फौजी अकड़े विचरैं
भरे गरूर अथोरे ॥
धवल धाम कै ध्वजा नगर की
प्रविसि रहीं घनमाहीं ।
कैधौं ये हिमपूरित भूधर
जहँ तहँ तुंग लखाहीं ॥
रैनि उजारी छटा निहारैं
यों मन में भ्रम व्याप्यो ।
जगमगात गोबर्द्धन गिरि कोउ
श्रम करिलैइत थाप्यो ॥
आवत जात देखि जन यूथन
मन पुनि होइ खभारू ।
बड़े नगर के आलय सोहत
यों थिर होई विचारू ॥
जहं जहं पथिक जाहिं देखन को
मुख फैलाइ रहैं यों ।
तोनि अबोधन की संभवता
को दरसाय रहैं ज्यों ॥
जिन लखि इक मीनार बाट में
अचरज परम कियो है ।
कूप ताहि गुनि मूरखता को
परिचय तुरत दियो है ॥
गुरु अरु लघु इमामबाड़ा
तिमि छत्रमँजिलहि सु देखो ।
ला मारटीनर रौसनदौला
केसर बागहिं लेखो ॥

निरखि मुहर्रम चन्द चन्द सम
दीप नक्षत्र समाना ।
मन भ्रम लहै लहै नहिं थिरता
गुनि सुरपुर सुखदाना ॥
ऋतु पावस भरि ऐशबाग़ में
मेला सुथरे चारु ।
प्रति सप्ताह जुरहिं मन मोहन
भरित अनन्द भँडारू ॥
सब विधि भूषित सुअर छबीले
नागर यान संवारी ।
रतिपति सरिस इतैं उत विचरैं
भरे चाव चित भारी ॥
इत सित चलदल अशित स्वान सह
भैरवनाथ विराजैं ।
तेजपुञ्ज अभिराम स्याम तनु
कोटि काम छवि लाजैं ॥
सूर दिवस प्रति देव दरस हित
होति इहां बड़ि भीरा ।
गुरु रविवार भीर भारन चपि
धरति धरनि नहिं धीरा ॥
जित तित हाट बाट बीथिन जन
करत दण्डवत आवैं ।
प्रेम पूरि करि विनय विविधि विधि
प्रभु पद सीस नवावैं ॥
अलीगञ्ज पति महावीर तिमि
राजत अति छवि धारे ।
चौक माहिं तिमि अम्ब कालिका
परमा परम पसारे ॥
यथा विभीषण भवन लङ्क महं
रहयो भिन्न मन भायो ।
खल मण्डली निवसि जेहिं निसि दिन
पूरन धर्म दृढ़ायो ॥
ताही विधि यहि रम्य पुरी महं
देव भवन ये राजैं ।
दरसन करत "बिनोद" सुसंचित
पाप पुरातन भाजैं ॥

बाणभट्ट

विष्णुकृष्ण शास्त्री चिपलूणकर के लेख से अनुवादित

[पूर्व प्रकाशित के आगे]

'कादम्बरी' की रचना के विषय में एक चमत्कृतिजनक घटना हुई है। उसका भी उल्लेख यहां पर आवश्यक बोध होता है। इस ग्रन्थ के दो भाग हैं—पर वे कवि-कृत नहीं हैं किन्तु कालकृत हैं! बाण कवि इस काव्य को अनुमान आधे तक लिख चुके होंगे कि सहसा कराल काल ने इन्हें कवलित कर लिया। पूर्वार्द्ध के अन्त में, अर्थात् जहां पर कथा-विच्छेद हुआ है वहां, प्रारम्भ किया हुआ (कादम्बरी का) भाषण वैसा ही अधूरा रह गया है सो वह अगले भाग में पूरा किया गया है। इस अनूठे काव्य की सृष्टि जिसने मन में निर्म्मित की उसी के हाथ से वह अन्त पर्य्यन्त पूर्ण नहीं होने पाया, इस बात को देख कर मन को बहुत खेद होता है और जान पड़ता है कि एतद्वारा संस्कृत भाषा को विषम हानि पहुंची है! अस्तु अब जो बात होगई सो तो हो ही गई; पर आज दिन इस घटना को देख परम सन्तोष होता है कि अधूरे रह गए हुए सुन्दर भवन को देख दर्शक को युगपत् आनन्द और शोक सर्वथा न होने देने की तजवीज बाणभट्ट के पुत्र ने कर रखी है। उसका रचा हुआ यह उत्तरार्द्ध यद्यपि पूर्वार्द्ध की योग्तता का नहीं हो सका है, तथापि इसमें अणुमात्र भी सन्देह नहीं है कि रसिक लोगों की यह सेवा तद्व्यतिरिक्त कवि द्वारा होनी सर्वथा असम्भव थी। सन्तत पिता के साथ रहने के कारण, और विशेषतः बाल्यावस्था से उसकी शिक्षा पिता द्वारा ही हुई होगी, एतावता उसके कवित्वगुण की झलक का उसपर पड़ना जैसा सम्भव था वैसा वह अपर कवि के लिये सम्भव न था, सो स्पष्ट ही है। सारांश, दूसरे कवि की बुद्धि कैसी ही विशाल क्यों न होती और उसका 'कादम्बरी' के साथ कैसा ही घनिष्ट परिचय क्यों न होता, पर तो भी वह बाणपुत्र की नांई 'कादम्बरी' को पूर्ण कदापि न कर सकता। स्वयं बाण कवि ही यदि इस अपूर्व काव्य को शेष कर पाते तो आज दिन उसका जो आकार है उसकी अपेक्षा डयोढ़ा तो वह अवश्य ही हो जाता; साथ ही यह भी निस्सन्देह बात है कि सम्प्रति उत्तरार्द्ध में जितना रस पाया जाता है उससे वह कहीं अधिक पाया जाता; तौभी यह बात कुछ सामान्य नहीं है कि मृत्युकाल के समय पिता ने जो अल्पमात्र सन्निधानक बतला दिया था उसीके आधार से पुत्र ने उस कथा को ऐसी उत्तमता पूर्वक परिशेष किया कि उसमें ऐसी कोई बात नहीं पाई जाती जो मूलग्रन्थ का विरोध करती हो। महान् महान् ग्रन्थकार भी अपने समस्त काव्यों में ही नहीं किन्तु कभी कभी एक ही काव्य में एक सा रस लाने के लिये असमर्थ हुए हैं। क्योंकि शिल्पकार्य्य की सफलता जितनी समय के गुण से सम्बन्ध रखती है उतनी शिल्पी के परिश्रम से नहीं रखती। विचार का स्थल है कि विशालबुद्धि-सम्पन्न मिल्टन कवि जिस उत्तमता के साथ अपने 'प्याराडैज लौस्ट' संज्ञक काव्य को पूर्ण कर सके हैं, उस उत्तमता के साथ वह उसी काव्य के उत्तर भाग 'प्याराडैज रिगेंड' को नहीं लिख सके। उसी प्रकार से यह बात भी अनेक बार दृष्टिगोचर हुई है कि ग्रन्थकारों ने अपनी प्राप्त पूर्व कीर्ति को अधिक बढ़ाने के अभिप्राय से अपने मूल ग्रन्थों में हेर फेर किए; पर उनका परिणाम कुछ और ही हुआ; यही कारण है कि चतुर लोग काव्यादि ग्रन्थों के एक बार उत्कृष्ट सम्पादित होजाने पर पुनः उनमें परिवर्तन नहीं करते। यह सब निजके ग्रन्थों के विषय में कहागया। फिर दूसरे के ग्रन्थ में हाथ डाल उसमें उलट फेर करना वा कुछ जोड़ तोड़ मिलाना कैसा दुरूह एवं गुरुतम कार्य्य है सो सब रसमर्म्मज्ञ लोगों पर विदित ही है। जैसे प्रत्येक मनुष्य का स्वभाव स्वरूप और स्वर एक दूसरे से कदापि नहीं मिलते, वैसे ही परस्पर के

बुद्धिगुण भी परस्पर के एक से नहीं पाए जाते। और इसके सिवाय एक बात यह भी देखने में आती है कि बड़े बड़े कुशाग्रबुद्धि वाले मनुष्यों को भी दीर्घ काल लों सतत परिश्रम करने के कारण गुणपुञ्ज में से किसी एकही में अधिकतर निपुणता प्राप्त होती है, और शेष सब गुण योंही रहते हैं। किसीका चित्त गद्य की ओर, किसीका पद्य की ओर, किसीका इतिहास की ओर, किसी का भिन्न भिन्न शास्त्रों की ओर, जैसा जैसा आकृष्ट होता है, और उसमें जैसा जैसा उसका प्रवेश होता जाता है, उसी प्रकार से वह उस विषय का पूर्ण वेत्ता हो जाता है। एक ही व्यक्ति में अनेक गुण एकत्रित हुए हों ऐसे उदाहरण कालिदास, सीज़र और आरिस्टॉटल के से लेखों में एकही दो पाए जाते हैं। सामान्यतः एकही गुण पूर्णतया प्राप्त करने के हेतु कई जन्म बिताने पड़ते हैं। अभि-प्राय यह है कि जब एक का मन दूसरे के मन से सर्वथा मेल नहीं खाता, तब एक की कृति में (कविता में) दूसरे का हाथ डालना प्रचण्ड साहस का कार्य्य है। इस विषय में प्राचीन काल का एक उदाहरण अत्यन्त समर्थक है। उक्त चतुर चूड़ामणि सीज़र बड़ा रणधुरन्धर था। उसके विषय में यह बात प्रसिद्ध है कि लड़ाई में उसे जो समय लिखने पढ़ने को मिल जाता था, उसमें उसने अपनी चढ़ाइयों की संक्षिप्त टिप्पणी लिख रखी हैं कि जो आज दिन प्रसिद्ध हैं। उन टिप्पणियों के लिखने में उसका अभिप्राय यह था कि मेरे पीछे कोई महान इतिहासकार उस समय का इतिहास लिखती बार मेरे लेख को आधार मान कर उसपर विस्तार करे। पर अचरज की बात है कि उक्त टिप्पणी आज दिन भी ज्यों की त्यों पाई जाती है, और उस समय के इतिहास का परमोत्कृष्ट एवं विश्वासपात्र ग्रन्थ भी वही मानी जाती हैं। सीज़र बादशाह के अनन्तर कई नामी इतिहासलेखक हुए, पर उनमें से एक को भी भरोसा न हुआ कि मैं उसकी उत्कृष्ट मूल रचना में कुछ हेर फेर कर कुछ विशेषता प्राप्त कर सकूंगा। सारांश, निज की नूतन रचना करना तादृश कठिन कार्य्य नहीं है, पर दूसरे के ग्रन्थ में जोड़ लगा दोनों का एक जी कर देना प्रतिसृष्टि निर्म्मित करने के समान प्रायः दुःसाध्य है। सारांश, ऐसे प्रचण्ड साहसकार्य्य में यश लाभ करना सामान्य बात नहीं है। हम समझते हैं कि 'कादम्बरी' परिशेष के विषय में बाणतनय उक्त श्लाघ्य यश को लाभ कर सके हैं।

सुना जाता है कि 'कादम्बरी' के शेष भाग को बाप के पहिले श्राद्ध के पूर्व ही अर्थात् एक साल के भीतर पूर्ण करने की उसने प्रतिज्ञा की थी और वैसा हो किया भी।

बाणपुत्र का नाम क्या था सो विदित नहीं है, और उसका उसने 'कादम्बरी' के उत्तरार्द्ध में उल्लेख भी नहीं किया है। इसका कारण स्पष्ट ही है। उसने अपने पिता के अन्तिम नियोग की पूर्त्तिमात्र की है, उसमें कोई बात नई और निज की नहीं है। इसके सिवाय जैसे चन्द्रकान्त का द्रवित होना चन्द्र के आधीन रहता है, उसी प्रकार से बाणभट्ट के पूर्वार्द्ध की शैली का अनुधावन कर उत्तरार्द्ध रचा है। अतः हम समझते हैं कि पूरा ग्रन्थ बाप के नाम से ही प्रसिद्ध हो इस उद्देश से उसने अपना नाम जान बूझ कर प्रगट नहीं किया, यह बात उसकी पितृभक्ति का प्रत्यक्ष प्रमाण बोध होती है। इसके अतिरिक्त उत्तरार्द्ध के आदि में उसने जो थोड़ी सी प्रस्तावना लिखी है उससे उसका प्रकृति सुलभ एवं बुद्धि-संस्कार-जन्य विनय भी स्पष्टतया बोध होता है। इस प्रस्तावना को पढ़ती बार मन की कुछ विलक्षण ही अवस्था हो जाती है! पाठकों को कथा की नायिका पर्य्यन्त पहुंचा कर अपना कवि उन्हें कथा में लाने के लिये उद्योग करही रहा था कि निठुर काल ने उसके आयुष्य की डोर काट दी, अतः यह अद्वितीय ग्रन्थ ऐसाही अधूरा रह गया, यह देखकर मन नितान्त उदासीन हो जाता है, और अगला मङ्गलाचरण भी अमङ्गलवत् जान पड़ने

लगता है। अगले पद्य प्रस्तावनास्वरूप होने पर भी ऐसे जान पड़ते हैं माना वे कविविषयक विलाप के हैं और मनमें इस वृत्तिका सञ्चार होने का प्रधान कारण तदन्तर्गत वृत्तों की मन्दता बोध होती है। वंशपरम्परागत विरले ही स्थान में पाएजाने वाला बुद्धिगुण इन पिता पुत्र में एकत्रित था और इस अभूतपूर्व घटनों को देख-मन कौतूहल समुद्र में मग्न हो जाता है; अर्थात् बाप की कृति का बेटे के हाथ से पूरा होना देख-कर मन नितान्त आश्चर्यित होता है; और मन वहीं से भय-चकित होने लगता है कि ऐसे प्रचण्ड साहस कार्य्य में हमारे होनहार कवि को क्योंकर यश लाभ हो सकेगा। पर ग्रन्थ आगे को जैसा जैसा पढ़ते जाओ वैसा वैसा वह भय दूर होता जाता है और अन्त में उसे प्राप्तयश देख प्रसन्नता होती है!

'कादम्बरी' शृङ्गार-रस-प्रधान ग्रन्थ है। इस रस की अपेक्षा इसमें किञ्चिदून कहीं कहीं अद्भुत और करुणा रस भी पाए जाते हैं; और अपर रसों को तो यों ही कहीं कहीं प्रसङ्गवश झलकमात्र देख पड़ती है। इस ग्रन्थ की पद रचना की विशेषता, अर्थात् लम्बे लम्बे समास प्रयुक्त करने की रीति, इसके प्रत्येक पृष्ठ में स्पष्टरूप से दीख पड़ती है। यह रीति कालिदास, भर्तृहरि प्रभृति प्राचीन कवियों के ग्रन्थों में बिलकुल नहीं देख पड़ती। उनके ग्रन्थों में चार पांच पदों के समास से अधिक पद के समास बहुत ही कम पाए जाते हैं। परन्तु काल-क्रमानुसार जब से यह प्राथमिक सरल रीति उठ कर कविता को सजाने के लिये यत्न किया जाना आरम्भ हुआ, तब से बड़े बड़े समास प्रयोग द्वारा रचना को विचित्र करने की प्रथा चल निकली। यह प्रणाली पद्य की अपेक्षा गद्य में अधिकतर स्वल्प कष्टसाध्य एवं विशेष शोभाप्रद होने के कारण गद्यरचना की परिपाटी चल निकली होगी ऐसा भी अनुमान किया जा सकता है। सम्प्रति संस्कृत के लभ्यमान ग्रन्थों को देख यह अनुमान होता है कि, इस नई परिपाटी का उत्पादक सुबन्धु कवि होगा। उसीको आगे बाणभट्ट और दण्डी ने अनुसृत किया*। पीछे यह बात उल्लिखित हो ही चुकी है कि भवभूति ने भी प्रसङ्गानुरोधवश ऐसी सजावट कहीं कहीं की है। अब यह रचना सदोष है वा निर्दोष है, इसके विषय में यहां पर कुछ लिखना आवश्यक बोध होता है। आज कल इस बात का अनुमान करलेना किञ्चित् कठिन जान पड़ता है कि जिस समय चारों ओर संस्कृत भाषा का पूर्ण अधिकार था, उस समय ऐसी रचना कैसी विलक्षण जान पड़ती होगी। तथापि उसकी ओर से पाठकों को थोड़ा सा वृत्तान्त सूचित करना आवश्यकीय जान पड़ता है। प्रथम तो यह बात सिद्ध ही सी बोध होती है कि जब बाण और भवभूति जैसे सुप्रसिद्ध कविगणों ने भी उसका अपने ग्रन्थों में प्रयोग किया है तो इस बात के मान लेने में क्या हानि है कि उक्त रचना को तत्कालीन पण्डितों ने सदोष नहीं माना, क्योंकि उक्त बात यदि वैसी न होती तो इन लोगों की कीर्त्ति ही कदापि न होने पाती। यह बात अवश्य मानी जा सकती है कि उस समय संस्कृत भाषा का प्रचार न्यून होकर वह केवल उच्चपदाभिषिक्त तथा विद्वान लोगों द्वारा ही व्यवहृत की जाती होगी। तौ भी इसमें अनुमात्र भी सन्देह नहीं है कि उक्तपद रचना को विलक्षण निश्चत करने के लिये उक्तलोग थोड़े बहुत अधिकृत थे; पर उनके अनन्तर और कुछ दिन बीतजाने के कारण अब हमलोगों को वह अधिकार भी नहीं रहा। ऐसी अवस्था में इसके विषय में सम्प्रति और भविष्यत में केवल बाह्यतःमात्र मत देने का अधिकार रह गया है। अर्थात् यह पदरचना कानों को कैसी लगती है, इसके योग से मन चमत्कृत हो आनन्दानुभव करता है वा नहीं, अब इस दूसरी बात के सम्बन्ध में नूतन मत प्रकाशित करने की वैसी कुछ आवश्यकता नहीं देख पड़ती।

* यह लेख जब प्रथम लिखा गया तब हमारी यही सम्मति थी। पर अवन्तिदण्डी के निबन्ध द्वारा ज्ञात हो जायगा कि यह भूल थी।

बाण कवि का यह ग्रन्थ आज बारह सौ वर्ष से विद्वान् लोगों के समीप विद्यमान है और गोवर्द्धन आचार्य्य प्रभृति सहृदय धुरीण रसिक लोगों ने उसे कसैाटी लगाकर परमोत्कृष्ट निर्धारित किया है। एतावता हम समझते हैं कि हमारा निम्नलिखित मत उन्हींके पुनरुच्चारण का सा है। 'कादम्बरी में शृङ्गाररस ही प्रधान होने के कारण कवि *, उसकी पद रचना को मार्दव, एवं लालित्यादि गुणों द्वारा विशेष रूप से अलंकृत कर सका है। साथ ही प्रसाद गुण की इस काव्य में प्रचुरता पाया जाता है। ये बातें यहां पर स्पष्ट रूप से उल्लिखित करने का कारण प्रस्फुटित ही है कि, इसमें बड़े बड़े समास और बीच बीच में बहुत सी वक्रोक्ति यद्यपि लाई गई हैं तौ भी ग्रन्थ के पढ़ते ही वे सब समझ में आजाती हैं। अर्थ की तिलमात्र भी हानि वा क्लिष्टता न होने देते बाणभट्ट ने श्लेषादि की विचित्र रचना की। इसमें संस्कृत भाषा उसके बस में किस प्रकार थी सो स्पष्ट रूप से जाना जा सकता है। पीछे लिखी हुई गोवर्द्धनाचार्य्य की आर्य्या और "बाणोच्छिष्टं जगत्सर्वम् †" इस पण्डितप्रसिद्ध वाक्य का मुख्यार्थ भी वही है। यह ग्रन्थ पढ़ती बार केवल दो प्रकार के श्रम मन को उठाने पड़ते हैं। एक तो यह कि जहां जहां विस्तृत वर्णन हैं, वहां वहां अन्वय ठीक प्रकार से ध्यान में आने के लिये उसके भिन्न टप्पों की ओर दत्तचित्त रहना पड़ता है, और दूसरे यह कि ऐसे वर्णनों में अनेक कल्पनाओं की एक ही स्थान में गुत्थमगुत्था होने के कारण उनमें से प्रत्येक के ठीक ठीक समझ में आने तक ठहरना पड़ता है। पर यह श्रम ऐसे हैं कि पढ़ने की बहार में इनका ज्ञान यों नहीं होने पाता।

* यहां पर कवि शब्द पिता पुत्र दोनों का बोधक है सो रसिक पाठकगण जान ही गए होंगे।

† 'सब जग बाणकवि की झूठन है' अर्थात् उसने कुछ नहीं छोड़ा।

अब इस ग्रन्थ के कतिपय परमोत्तम संग्रह पाठकों के अवलोकनार्थ नीचे उद्धृत किए जाते हैं।

प्रथमतः शृङ्गार के उदाहरण लिखे जाते हैं। यही रस वर्त्तमान काव्य में प्रधान है सो पीछे लिखी चुके हैं। और यह रस अपने कवि को कितना प्रिय था सो उसकी प्रस्तावना मात्र से ज्ञात हो सकता है। दुष्टों की निन्दा और सज्जनों की स्तुति करना यह कवियों का सम्प्रदाय प्रायः निश्चित् ही हो गया है; सो उसका अनुधावन करते हमारे कवि लिखते हैं:—

कटुकणंतो मलदायकःखलःस्तुदन्त्यलम्बन्धनशृङ्खला इव।
मनस्तु साधु ध्वनिभिः पदे पदे हारन्ति सन्तो मणिनूपुरा इव॥

"दुर्जन लोग पांवों की बेड़ियों की नांई कर्णकटु शब्द (भाषण) बोलते हैं; और मल के (पाप के) भागी बना देते हैं, पर सज्जन लोग मणिनूपुर की नांई मञ्जुल शब्दों द्वारा (मधुर भाषण द्वारा) पद पद पर मन को रिझाते हैं"। [क्रमशः]

कवि-कर्तव्य

कवि-कर्तव्य से हमारा अभिप्राय हिन्दी के कवियों के कर्तव्य से है। समय और समाज की रुचि के अनुसार सब बातों का विचार करके हम यह दिखलाना चाहते हैं कि कवि का कर्तव्य क्या है। अपने मनोगत विचारों को हमें थोड़े ही में कहना है; अतः इस लेख को हम चार ही भागों में विभक्त करेंगे; अर्थात्—छन्द, भाषा, अर्थ और विषय। इन्हीं की यथाक्रम हम समीक्षा आरम्भ करते हैं।

छन्द

२—गद्य और पद्य दोनों ही में कविता हो सकती है। यह समझना अज्ञानता की पराकाष्ठा है कि जो कुछ छन्दोबद्ध है सभी काव्य है। कविता का लक्षण जहां कहीं पाया जाता है, चाहै वह गद्य में हो चाहै पद्य में, वही काव्य है। लक्षणहीन

होने से कोई भी छन्दोबद्ध लेख काव्य नहीं कहलाए जा सकते और लक्षणयुक्त होने से सभी गद्य-बन्ध काव्यकक्षा में सन्निविष्ट किए जा सकते हैं। गद्य के विषय में कोई विशेष नियम निर्धारित करने की उतनी आवश्यकता नहीं है जितनी पद्य के विषय में है। इसलिये हम, यहां पर, पद्य ही का विचार करेंगे। भाषा, अर्थ और विषय के सम्बन्ध में जो कुछ हम कहेंगे वह गद्य के सम्बन्ध में भी प्रायः समान भाव से प्रयुक्त हो सकेगा।

३—ऐसी पंक्तियां जिनमें वर्णों की अथवा मात्राओं की संख्या नियमित होती है, उन्हें छन्द कहते हैं; और छन्द में जो कुछ कहाजाता है वह पद्य कहलाता है। कोई कोई छन्द और पद्य दोनों को एकही अर्थ का वाचक मानते हैं।

जो सिद्ध कवि हैं वे चाहे जिस छन्द का प्रयोग करें उनका पद्य अच्छा ही होता है; परन्तु, सामान्य कवियों को विषय के अनुकूल छन्दोयोजना करनी चाहिए। जैसे समय-विशेष में राग-विशेष के गाए जाने से चित्त अधिक चमत्कृत होता है, वैसेही वर्णन के अनुकूल वृत्त प्रयोग करने से कविता के आस्वादन करनेवालों को अधिक आनन्द मिलता है। गले में डाली हुई मेखला के समान वृत्तरूपी हारलता को अनुचित स्थान में विनिवेशित करने से कवि की अज्ञानता दर्शित होती है। इस छोटे से लेख में हम इस बात का विवेचन नहीं कर सकते, कि किस विषय के लिये कौन छन्द प्रयोग में लाना चाहिए। काव्य के मर्म्मज्ञ निपुण कवि स्वयमेव जान सकते हैं, कि कौन छन्द कहां विशेष शोभावर्धक होगा। प्राचीन संस्कृत-कवि इसका पूरा पूरा विचार रखते थे। उन्होंने ऋतुओं का वर्णन प्रायः उपजाति छन्द में किया है; नीति का वंशस्थ में किया है; चन्द्रोदयादि का रथोद्धता में किया है; वर्षा और प्रवास का मन्दाक्रान्ता में किया है; और स्तुति, यश, शौर्य आदि का शार्दूलविक्रीड़ित और शिखरिणी में किया है। यही नहीं; किन्तु वृत्तरचना में छन्दःशास्त्र के नियमों के अतिरिक्त वे लोग और और विषयों का भी ध्यान रखते थे। दोधक वृत्त का लक्षण ३ भगण और २ गुरु है; इस नियम का प्रतिपालन करते हुए वे तीन ही तीन अक्षरवाले शब्द प्रयोग करते थे; जिससे छन्द की शोभा विशेष बढ़ जाती थी। तोटक में वे रूखे अक्षरवाले ही शब्द रखते थे; क्योंकि, ऐसे अक्षरवाले शब्दों से संगठित हुआ तोटक, ताल की द्रुतगति के समान, मन को सविशेष आनन्दित करता है। भाषा-कवियों को भी इन बातों का विचार रखना चाहिए।

४—हम समझते हैं कि दोहा, चौपाई, सोरठ, घनाक्षरी, छप्पय और सवैया आदि का प्रयोग हिन्दी में बहुत हो चुका। कवियों को चाहिए कि यदि वे लिख सकते हैं तो इनके अतिरिक्त और और छन्द भी वे लिखा करें। हम यह नहीं कहते कि ये छन्द नितान्त परित्यक्त ही कर दिए जावें। हमारा अभिप्राय यह है कि, इनके साथ साथ संस्कृत काव्यों में प्रयोग किए गए वृत्तों में से दो चार उत्तमोत्तम वृत्तों का भी हिन्दी में प्रचार किया जाय। इन वृत्तों में से द्रुतविलम्बित, वंशस्थ और वसन्ततिलका आदि वृत्त ऐसे हैं जिनका प्रचार भाषा में होने से भाषा काव्य की विशेष शोभा बढ़ेगी। किसी किसी ने इन वृत्तों का प्रयोग आरम्भ भी कर दिया है। यह सूचना उन्हीं लोगों के लिये है जो सब प्रकार के छन्द लिखने में समर्थ हैं; जो घनाक्षरी और दोहे अथवा चौपाई की सीमा उल्लंघन करने में असमर्थ हैं उनके लिये नहीं।

आजकल के बोलचाल की हिन्दी (खड़ीबोली) की कविता उर्दू के से एक विशेष प्रकार के छन्दों में अधिक खुलती है; अतः ऐसी कविता लिखने में तदनुकूल छन्द प्रयुक्त होने चाहिएं।

किसी किसी को एक ही प्रकार का छन्द सध जाता है; उसेही वे अच्छा लिख सकते हैं। उनको दूसरे प्रकार के छन्द लिखने का प्रयत्न भी न करना चाहिए। यदि कविता सरस और मनोहारिणी है

तो चाहे वह एक ही अथवा बुरे से बुरे छन्द में क्यों न हो, उससे आनन्द अवश्य ही मिलता है। तुलसीदास ने चौपाई और विहारी लाल ने दोहा लिख कर ही इतनी कीर्ति सम्पादन की है। प्राचीन कवियों को भी किसी किसी वृत्त से समधिक स्नेह था; वे अपने आदृत वृत्त को ही अधिक काम में लाते थे, और उसमें उनकी कविता खुलती भी अधिक थी। भारवि का वंशस्थ, रत्नाकर की वसन्ततिलका, भवभूति और जगन्नाथ राय की शिखरिणी, कालिदास की मन्दाक्रान्ता और राजशेखर का शार्दूल-विक्रीड़ित इस विषय में प्रमाण है।

५-हमारा यह मत है कि पादान्त में अनुप्रास-हीन छन्द भी भाषा में लिखे जाने चाहिएँ। इस प्रकार के छन्द जब संस्कृत, अङ्गरेज़ी और बँगला में विद्यमान हैं, तब कोई कारण नहीं, कि हमारी भाषा में वे न लिखे जावें। संस्कृत ही हिन्दी की माता है। संस्कृत का सारा कविता-साहित्य इस तुकबन्दी के बखेड़े से बहिर्गत है। अतएव इस विषय में यदि हम संस्कृत का अनुकरण करें तो सफलता की पूरी पूरी आशा है। अनुप्रास-युक्त पादान्त सुनते सुनते हमारे कान उस प्रकार की पंक्तियों के पक्षपाती हो गए हैं। इसीलिये अनुप्रासहीन रचना अच्छी नहीं लगती। बिना तुकवाली कविता के लिखने अथवा सुनने का अभ्यास होते ही वह भी अच्छी लगने लगैगी; इसमें कोई सन्देह नहीं। अनुप्रास और यमक आदि शब्दाडम्बर कविता के आधार नहीं हैं जो उनके न होने से कविता निर्जीव हो जावै या उसे कोई अपरिमेय हानि पहुंचै। कविता का अच्छा और बुरा होना विशेषतः अच्छे अर्थ और रस-बाहुल्य पर अवलम्बित है। परन्तु अनुप्रासों के ढूंढ़ने का प्रयास उठाने में समर्पक शब्द न मिलने से अर्थांश की हानि हो जाया करती है जिससे कविता की चारुता नष्ट हो जाती है। अनुप्रासों का विचार न करने से कविता लिखने में सुकरता भी होती है और मनोऽभिलषित अर्थ को व्यक्त करने में विशेष कठिनाई भी नहीं पड़ती। अतएव पादान्त में अनुप्रासहीन छन्द भाषा में लिखे जाने की बड़ी आवश्यकता है। संस्कृत में प्रयोग किए गए शिख-रिणी, वंशस्थ और वसन्ततिलका आदि वृत्त ऐसे हैं जिनमें अनुप्रास का न होना भाषा-काव्य के रसिकों को बहुत ही कम खटकैगा। पहिले पहल इन्हीं वृत्तों का प्रयोग होना चाहिए।

किसी भी प्रचलित परिपाटी का क्रम भङ्ग होता देख प्राचीनों के पक्षपाती बिगड़ खड़े होते हैं और नवीन संशोधन के विषय में नाना प्रकार की कुचेष्टा और दोषोद्भावना करने लगते हैं। हमको आशङ्का है कि इस विषय में भी किसी किसी का मत हमारे मत के प्रतिकूल होगा। परन्तु कुछ दिनों में हमारे प्रतिपक्षियों को इस नवीन सूचना की उपयोगिता स्वीकार करके, अपने मत को उन्हें अवश्यमेव भ्रान्तिमूलक मानना पड़ैगा। इसका हमको दृढ़ विश्वास है। अतः इस विषय में यदि कोई कुछ प्रतिकूल भी कहै तो भी उसके कहने की ओर नयननिक्षेप न करना चाहिए। हमारा यह कथन नहीं कि पादान्त में अनुप्रासवाले छन्द नितान्त लिखे ही न जाया करैं। हमारा कथन इतना ही है कि, इस प्रकार के छन्दों के साथ अनुप्रासहीन छन्द भी लिखे जावैं। बस।

भाषा

६-कवि को ऐसी भाषा लिखनी चाहिए जिसे सब कोई सहज में समझकर अर्थ को हृदयङ्गम कर सकै। पद्य को पढ़ते ही उसका अर्थ बुद्धिस्थ हो जाने से विशेष आनन्द आता है और पढ़ने में जी लगता है। परन्तु, जिस काव्य का भावार्थ क्लिष्टता से समझ में आता है उसके आकलन में जी नहीं लगता और बार बार अर्थ का विचार करते करते उससे विरक्ति हो जाती है। जो कुछ लिखा जाता है वह इस अभिप्राय से लिखा जाता है कि लेखक का हृद्गत-भाव दूसरे समझ जावें; यदि इस उद्देश्य ही की सफलता न हुई तो

लिखना ही व्यर्थ हुआ। खेद की बात है कि, हमारे लेख बहुधा क्लिष्ट होते हैं; परन्तु हम सत्य बातको सानन्द स्वीकार करते हैं और कहते हैं कि क्लिष्ट की अपेक्षा सरल लिखना ही सब प्रकार वांछनीय है। कालिदास, भवभूति और तुलसीदास के काव्य सरलता के आकर हैं; परम विद्वान् होकर भी इन्होंने सरलता ही के विशेष मान दिया है; इसीलिये इनके काव्यों का इतना आदर है। जो काव्य सर्वसाधारण की समझ के बाहर होता है वह बहुत कम लोक-मान्य होता है। कवियों को इसका सदैव ध्यान रखना चाहिए।

७—कविता करने में व्याकरण के नियमों की अवहेलना न करनी चाहिए। शुद्ध भाषा का जितना मान होता है अशुद्ध का उतना नहीं होता। व्याकरण का विचार न करना कवि की तद्विषयक अज्ञानता का सूचक है। इस समय के कोई कोई कवि व्याकरण के नियमों की ओर दृकपात् तक नहीं करते। यह बड़े खेद और लज्जा की बात है। व्रजभाषा की कविता में कविजन मन मानी निरंकुशता दिखलाते हैं। यह उचित नहीं। जहां तक सम्भव हो शब्दों के मूलरूप न बिगाड़ने चाहिएं।

मुहाविरे का भी विचार रखना चाहिए। बे मुहाविरे की भाषा अच्छी नहीं लगती। "क्रोध क्षमा कीजिए" इत्यादि वाक्य कान के अतिशय पीड़ा पहुंचाते हैं। मुहाविरा ही भाषा का जीव है; उसे जिसने नहीं जाना उसने कुछ नहीं जाना। उसकी भाषा कदापि आदरणीय नहीं हो सकती।

८—विषय के अनुकूल शब्दस्थापना करनी चाहिए। कविता एक अपूर्व रसायन है। उसके रस की सिद्धि के लिये बड़ी सावधानी, बड़ी मनोयोगिता और बड़ी चतुराई आवश्यक होती है। रसायन सिद्ध करने में आंच के न्यूनाधिक होने से जैसे रस बिगड़ जाता है, वैसे ही यथोचित शब्दों का उपयोग न करने से काव्यरूपी रस भी बिगड़ जाता है। किसी किसी स्थल-विशेष पर रूक्षाक्षरवाले शब्द अच्छे लगते हैं; परन्तु, और सर्वत्र ललित और मधुर शब्दों ही को प्रयोग में लाना उचित है। शब्दों के चुनने में अक्षरमैत्री का विशेष विचार रखना चाहिए। अच्छे अर्थ का द्योतक न होकर भी कोई कोई पद्य केवल अपनी मधुरता ही से पढ़ने वालों के अंतःकरण को द्रवीभूत कर देता है। "टुटत अङ्ग बैठे तरु जाई" इत्यादि वाक्य लिखना भाषा की कविता के मुख पर कालिमा लगाना है।

शब्दों को यथास्थान रखना चाहिए। शब्द स्थापना ठीक न होने से कविता की जो दुर्दशा होती है और अर्थांश में जो क्लिष्टता आजाती है उसके उदाहरण देखने हों तो हमारी लिखी हुई "हिन्दी कालिदास की समालोचना" देखिए।

९—गद्य और पद्य की भाषा पृथक् पृथक् न होनी चाहिए। यह एक हिन्दी ही ऐसी भाषा है जिसके गद्य में एक प्रकार की और पद्य में दूसरे प्रकार की भाषा लिखी जाती है। सभ्य-समाज की जो भाषा हो उसी भाषा में गद्य-पद्यात्मक साहित्य होना चाहिए। गद्य का प्रचार हिन्दी में थोड़े दिन से हुआ है। पहले गद्य न था; भाषा का साहित्य केवल पद्यमय था। गद्य-साहित्य की उत्पत्ति के पहिले पद्य में व्रजभाषा ही का सार्वदेशिक प्रयोग होता था। अब कुछ अन्तर होने लगा है। गद्य की, इस समय, उन्नति हो रही है; अतएव अब यह सम्भव नहीं कि, गद्य की भाषा का प्रभाव पद्य पर न पड़े। जो प्रबल होता है वह निर्बल को अवश्य अपने वशीभूत करलेता है। यह बात भाषा के सम्बन्ध में भी तद्वत् पाई जाती है। ५० वर्ष पहले के कवियों की भाषा इस समय के कवियों की भाषा से मिलाकर देखिए। देखने से तत्काल विदित हो जायगा, कि आधुनिक कवियों पर बोलचाल की हिन्दीभाषा ने अपना प्रभाव डालना आरम्भ कर दिया है; उनकी लिखी व्रजभाषा की कविता में बोलचाल (खड़ी बोली) के जितने शब्द और मुहाविरे मिलैंगे उतने ५० वर्ष पहले के

कवियों की कविता में कदापि न मिलेंगे। यह निश्चित है कि किसी समय बोलचाल की हिन्दी भाषा, ब्रजभाषा की कविता के स्थान को अवश्य छीन लेगी। इसलिये कवियों को चाहिए कि क्रम क्रम से वे गद्य की भाषा में भी कविता करना आरम्भ करें। बोलना एक भाषा और कविता में प्रयोग करना दूसरी भाषा, प्राकृतिक नियमों के विरुद्ध है। जो लोग हिन्दी ही बोलते हैं और हिन्दी ही के गद्य-साहित्य की शुश्रुषा करते हैं उनके पद्य में ब्रज की भाषा का आधिपत्य बहुत दिन तक नहीं रह सकता।

अर्थ

१०—अर्थ-सौरस्य ही कविता का जीव है। जिस पद्य में अर्थ का चमत्कार नहीं वह कविता ही नहीं। कवि जिस विषय का वर्णन करे उस विषय से उसका तादात्म्य हो जाना चाहिए; ऐसा न होने से अर्थसौरस्य नहीं आ सकता। विलाप वर्णन करने में कवि के मन में यह भावना होनी चाहिए कि वह स्वयम् विलाप कर रहा है और वर्णित दुःख का स्वयम् अनुभव कर रहा है। प्राकृतिक वर्णन लिखने के समय उसके अन्तःकरण में यह दृढ़ संस्कार होना चाहिए कि, वर्ण्यमान नदी, पर्वत अथवा वन के सम्मुख वह स्वयम् उपस्थित होकर उनकी शोभा देख रहा है। कवि के आत्मा का वर्ण्य-विषयों से जब, इस प्रकार, निकट सम्बन्ध हो जाता है, तभी उसका किया हुआ वर्णन यथार्थ होता है और तभी उसकी कविता को पढ़ कर पढ़नेवालों के हृदय पर तद्वत् भावनाएं उत्पन्न होती हैं। कविता करने में, हमारी समझ में, अलङ्कारों को बलात् लाने का प्रयत्न न करना चाहिए। विषयों का तादात्म्य करते हुए धाराप्रवाह से जो कुछ टेढ़ा या सीधा उस समय मुख से निकले उसे ही रहने देना चाहिए। बलात् किसी अर्थ के लाने को चेष्टा करने की अपेक्षा प्रकृतभाव से जो कुछ आजावे उसे ही पद्यबद्ध कर देना अधिक सरस और आह्लादकारक होता है। अपने मनोनीत अर्थ को इस प्रकार व्यक्त करना चाहिए कि पद्य के पढ़ते ही पढ़ने वाले उसे तत्क्षण हृदयङ्गम कर सकें; क्लिष्टकल्पना अथवा सोच विचार करने की आवश्यकता उन्हें न पड़े।

११—बहुत से शब्द ऐसे हैं जो सामान्य रीति से सब एकही अर्थ के व्यञ्जक हैं, परन्तु विशेष ध्यानपूर्वक देखने अथवा धातु के अर्थ का विचार करने से पृथक् पृथक् शब्दों में पृथक् पृथक् शक्तियों का गर्भित रहना प्रकट होता है। 'तन्वी' शब्द का सामान्य अर्थ स्थलविशेष में स्त्री होता है, परन्तु 'तनु' शब्द का कृश अर्थ होने के कारण 'तन्वी' का विशेष अर्थ दुर्बल है। यदि कहें कि "यह तन्वी अपने पति के साथ सुखसे अपने घर रहती है" तो यहां 'तन्वी' शब्द उस अर्थ का व्यञ्जक नहीं हो सकता जो अर्थ 'रामा' इत्यादि शब्दों का होता है। परन्तु, यदि, कहें कि "यह तन्वी अपने प्रियतम का वियोग बड़े धैर्य्य से सहन कर रही है" तो यहां 'तन्वी' शब्दकी गर्भित शक्ति से वियोगद्योतक अर्थ को सहायता पहुंचती है। अतः ऐसे स्थल पर इस शब्दका प्रयोग बहुत प्रशस्त है। अर्थ-सौरस्य के लिये जहां तक सम्भव हो, ऐसेही ऐसे शक्तिमान् शब्द प्रयोग करने चाहिए।

१२—घनाक्षरी और सवैया आदि के कोई कोई कवियों की कविता में कभी कभी अनेक निरर्थक शब्द आजाते हैं। कभी कभी शब्दों के ऐसे विकृत रूप प्रयुक्त हो जाते हैं कि उनका अर्थ ही समझ में नहीं आता। कभी कभी पादान्त में समान अक्षर लाने ही के लिये निरर्थक अथवा अपभ्रष्ट शब्द लाए जाते हैं। ब्रजभाषा की कविता, अथवा घनाक्षरी या सवैया के हम प्रतिकूल नहीं हैं; परन्तु, हमारा यह मत है कि, अर्थ के सौरस्य ही की ओर कवियों का ध्यान अधिक होना चाहिए; शब्दों के आडम्बर की ओर नहीं। अर्थहीन अथवा अनुपयोगी शब्द न लिखे जाने चाहिएं और न शब्दों के प्रकृत रूप को बिगाड़ना ही चाहिए।

शब्दों को बिगाड़ने से उनके बिगड़े हुए रूप पढ़नेवालों के कान को खटकते हैं और जिस अर्थ में वे प्रयुक्त होते हैं उस अर्थ की कभी कभी वे पोषकता भी नहीं करते।

१३—अश्लीलता और ग्राम्यतागर्भित अर्थों से कविता को कभी न दूषित करना चाहिए; और न देश, काल तथा लोक आदि के विरुद्ध कोई बात कहनी चाहिए। कविता को सरस करने का प्रयत्न करना चाहिए। नीरस पद्यों का कभी आदर नहीं होता। जिसे पढ़ते ही पढ़नेवाले के मुख से 'वाह' न निकलै, अथवा उसका मस्तक न हिलने लगै, अथवा उसकी दन्तपंक्ति न दिखलाई देने लगै, अथवा जिस रस की कविता है उस रस के अनुकूल वह व्यापार न करने लगै तो वह कविता कविता ही नहीं; वह तुकबन्दी मात्र है। कविता के सरस होने ही से ये उपर्युक्त बातें हो सकती हैं; अन्यथा नहीं। रस ही कविता का सबसे बड़ा गुण है। श्रीकण्ठचरित के कर्त्ता ने ठीक कहा है—

तैस्तैरलंकृतिशतैरवतंसितोऽपि रूढ़ो महत्यपि पदे धृतसौष्ठवोऽपि।
नूनं विना घनरसप्रसराभिषेकं काव्याधिराजपदमर्हति न प्रबन्धः॥

अर्थात् सैकड़ों अलङ्कारों से अलंकृत होकर भी, शब्द-शास्त्र के उच्चासन पर अधिरूढ़ होकर भी, और सब प्रकार सौष्ठव को धारण करके भी, रस रूपी अभिषेक के बिना कोई भी प्रबन्ध काव्याधिराज पदवी को नहीं पहुंचता।

विषय

१४—कविता का विषय मनोरञ्जक और उपदेशजनक होना चाहिए। यमुना के किनारे केलि कौतूहल का अद्भुत अद्भुत वर्णन बहुत हो चुका। न परकीयाओं पर प्रबन्ध लिखने की अब कोई आवश्यकता है और न स्वकीयाओं के "गतागत" की पहेली बुझाने की। चींटी से लेकर हाथी पर्य्यन्त पशु; भिक्षुक से लेकर राजा पर्य्यन्त मनुष्य; बिन्दु से लेकर समुद्र पर्य्यन्त जल; अनन्त आकाश; अनन्त पृथ्वी; अनन्त पर्वत-सभी पर कविता हो सकती है; सभी से उपदेश मिल सकता है और सभी के वर्णन से मनोरञ्जन हो सकता है। फिर क्या कारण है कि, इन विषयों को छोड़कर स्त्रियों की चेष्टाओं का वर्णन करना ही कोई कोई कवि कविता की चरम सीमा समझते हैं? केवल अविचार और अन्धपरम्परा! यदि "मेघनादवध" अथवा "यशवन्तराव महाकाव्य" वे नहीं लिख सकते, तो उनको ईश्वर की निःसोम सृष्टि में से छोटे से छोटे सजीव अथवा निर्जीव पदार्थों को चुनकर उन्हीं पर छोटी छोटी कविता करनी चाहिए। अभ्यास करते करते शायद कभी किसी समय वे इससे अधिक योग्यता दिखलाने में समर्थ होवैं और दण्डी कवि के कथनानुसार* शायद कभी वाग्देवी उनपर सचमुच प्रसन्न होजावै। के हाव भावादि के वर्णन का अभ्यास करने वालों पर भी सरस्वती की कृपा हो सकती है; परन्तु तदर्थ उसकी उपासना न करनी ही अच्छा है।

१५-संस्कृत में सहस्रशः उत्तमोत्तम काव्य विद्यमान हैं। अतः उस भाषा में काव्यप्रकाश, ध्वन्यालोक, कुवलयानन्द, रसतरङ्गिणी आदि साहित्य के अनेक लक्षणग्रन्थों का होना अनुचित नहीं। परन्तु हिन्दी भाषा में सत्काव्यों का प्रायः अभाव होने के कारण अलङ्कार और रस-विवेचन के झगड़ों से जटिल ग्रन्थों के बनने की हम कोई आवश्यकता नहीं देखते। 'हेला'-हाव का लक्षण और उसका चित्र देखने से क्या लाभ? अथवा दीपक अलङ्कार के सूक्ष्म से भी सूक्ष्म भेदों के जानने का क्या उपयोग? हिन्दी में ऐसे कितने काव्य हैं जिनमें ये सब भेद पाए जाते हैं? हमारी अल्पबुद्धि के अनुसार रस-कुसमाकर और

---

* न विद्यते यद्यपि पूर्ववासना गुणानुबन्धि प्रतिभानमद्भुतम्।
श्रुतेन यत्नेन च वागुपासिता ध्रुवं करोत्येव कमप्यनुग्रहम्॥
काव्यादर्श।

अर्थात्-पूर्व वासना और अद्भुत प्रतिभा न होने पर भी शास्त्र के अनुशीलन और यत्न के अभिनिवेश द्वारा उपासना की गई सरस्वती कुछ न कुछ अनुग्रह अवश्य करती है।

जसवन्तजसो(!)भूषण के समान ग्रन्थों की, इस समय, आवश्यकता नहीं। इनके स्थान में यदि कोई कवि किसी आदर्श पुरुष के चरित्र को अवलम्बन करके एक अच्छा काव्य लिखता तो उससे हमारे हिन्दी-साहित्य को अलभ्य लाभ होता। कनिष्ठा और ज्येष्ठा का भेद और उनके चित्र देखे तो क्या और न देखे तो क्या ? और उत्प्रेक्षा अलङ्कार का लक्षण नामानुसार सिद्ध हो गया तो क्या और न सिद्ध हो गया तो क्या ? नायिकाओं के भी झगड़े में उलझकर हानि के अतिरिक्त लाभ की कोई सम्भावना नहीं। हिन्दी काव्य की हीन दशा को देखकर कवियों को चाहिए कि वे अपनी विद्या, अपनी बुद्धि और अपनी प्रतिभा का दुरुपयोग इस प्रकार के ग्रन्थ लिखने में न करें। अच्छे काव्य लिखने का उन्हें प्रयत्न करना चाहिए; अलङ्कार-रस और नायिका-निरूपण बहुत हो चुका।

१६-इस समय, कवियों का एक दल कवि समाजों और कवि-मण्डलों में बद्ध होकर समस्या-पूर्ति करने में व्यग्र हो रहा है। इन पूर्तिकारों में से कुछ को छोड़ शेष सब कविता के नाम की बड़ी ही अवहेलना कर रहे हैं। इनको चाहिए, कि बिना योग्यता सम्पादन किए समस्यापूर्ति करने के झगड़े में ये न पड़ें। अच्छी समस्यापूर्ति करना असाधारण प्रतिभावान् का काम है। एक साधारण कवि अपने मनोऽनुकूल विषय पर एकही घड़ी में चाहै ५० पद्य लिख डाले और वे सब चाहै अच्छे भी हों; परन्तु किसीकी समस्या के टुकड़े पर अच्छी कविता करने में वह शायद ही सफल-मनोरथ होगा। समस्यापूर्ति के लिये असामान्य कैाशल और प्रबल प्रतिभा की आवश्यकता है। इस समय, प्रतिभा का पूरा पूरा विकास बहुत कम देखा जाता है; इसलिये समस्याओं की पूर्तियां भी प्रायः अच्छी नहीं होतीं। हमारी यह सम्मति है कि इस समस्या-पूर्ति के विषय को छोड़ कर, अपनी अपनी इच्छा के अनुसार विषयों को चुनकर, कवियों को, यदि बड़ी न हो सकै, तो छोटी छोटी स्वतन्त्र कविता करनी चाहिए; क्योंकि इस प्रकार की कविताओं का हिन्दी में प्रायः अभाव है।

१७—संस्कृत और अङ्गरेज़ी काव्यों का हिन्दी में अनुवाद करने की ओर भी कवियों की रुचि बढ़ने लगी है। परन्तु स्वतन्त्र कविता करने की अपेक्षा दूसरे की कविता का अन्यभाषा में अनुवाद करना बड़ा कठिन काम है। अङ्गरेज़ी से हिन्दी में और संस्कृत से हिन्दी में अनुवाद करने में, क्रमशः पण्डित श्रीधर पाठक और राजा लक्ष्मणसिंह हो ने सफलता प्राप्त की है। एक शीशी में भरे हुए इत्र को जब दूसरी शीशी में डालने लगते हैं तब पहले डालने ही में कठिनता उपस्थित होती है; और यदि बिना दो चार बूंद इधर उधर टपके वह दूसरी शीशी में चला भी गया, तो इस उलट फेर करने में उसके सुवास का विशेषांश अवश्य उड़ जाता है। एक भाषा की कविता का दूसरी भाषा में अनुवाद करनेवालों को यह बात स्मरण रखनी चाहिए। बुरा अनुवाद करना मूल कवि का अपमान करना है; क्योंकि अनुवाद के द्वारा उसके गुणों का ठीक ठीक परिचय न होने के कारण, पढ़नेवालों की दृष्टि में वह हीन हो जाता है। इसलिये किसी पुस्तक का अनुवाद आरम्भ करने के पहले अनुवादक को अपनी योग्यता का विचार कर लेना नितान्त आवश्यक है। सच तो यह है कि जो अच्छा कवि है वही अच्छा अनुवाद करने में समर्थ हो सकता है; दूसरा नहीं। परन्तु अच्छा कवि होना ही दुर्लभ है। महाकवि मङ्खक ने यथार्थ कहा है—

तान्यर्थरत्नानि न सन्ति येषां सुवर्णसंघेन च ये न पूर्णाः।
ते रीतिमात्रेण दरिद्रकल्पाः यान्तीश्वरत्वं हि कथं कवीनाम्॥

अर्थात्—अर्थरत्न और सुवर्णसमूह से जो परिपूर्ण नहीं हैं वे महादरिद्री लोग केवल रीतिमात्र का अवलम्बन करके कवीश्वर की पदवी कदापि नहीं पा सकते।

१८—काव्य के गुणों और दोषों की विवेचना संस्कृत की जिन पुस्तकों में है उनमें कवियों के

कर्तव्य और अकर्तव्य पर बहुत कुछ कहा गया है; परन्तु, उन सब बातों का विचार हम यहां पर नहीं कर सकते। केवल स्थूल स्थूल बातों ही के विचार करने की इच्छा से हमने यह लेख आरम्भ किया था; अतएव, अब हम इसे यहीं समाप्त करते हैं।

शिक्षा

किसी ने ठीक ही कहा था कि "वाणिज्ये वसते लक्ष्मी"। परन्तु अब तो अवस्था ही दूसरी है, अतएव अब "वाणिज्ये वसते सर्वम्" यही कहना पड़ेगा। संसार का चक्र कदापि स्थिर न रहा है न रहेगा। वह सदा चलायमान है। इससे जो एक समय बियावान जङ्गल था, वह अब जनस्थल हो सुन्दर उच्च प्रासादों से सुशोभित है; और जहां किसी काल में एक सुरम्या जनसंकुला नगरी बसी थी, वहां अब उसके एक चिन्ह भी पृथ्वी के ऊपर नहीं देख पड़ते। इसी प्रकार से जो जातियां एक समय सर्वोत्तम आसन पर विराजती थीं, आज उनको सभ्य कहने में भी लोग सकुचाते हैं। कुछ तत्वज्ञों का यह कथन क्या सिद्धान्त ही है कि जातियां गिरकर यदि उठतीं नहीं तो अब तक कोई भी उनमें से नहीं उठी है। अंशतः यह सत्य हो सकता है, पर गिरकर जातियां यदि उठी नहीं तो पड़ी भी नहीं है, वे बैठने में समर्थ हुई हैं और सम्भव है कि समय पाकर वे खड़ी भी हो जांय, और तब पुनः अपने आसन को ग्रहण कर सकें। इस उद्देश्य का सफलीभूत होना सम्भव हो अथवा असम्भव, पर आँखों के सामने तो इसी उद्देश्य का रहना उचित और श्रेयस्कर है। अस्तु इस उद्देश्य को सामने रख कर अधोपतित जातियों को क्या करना उचित है इसीका विचार इस प्रबन्ध का मुख्य उद्देश्य है। कुछ लोग सामाजिक सुधार, कुछ लोग राजनैतिक स्वत्वप्राप्ति और कुछ लोग अन्य बातों को ही देश की उन्नति का तारक मन्त्र मानते हैं। पर संसार की अवस्था दिनोदिन बदलती जाती है। अपनेको वर्त्तमान अवस्थानुकूल बनाना ही उन्नति की सोपान पर पैर रखना है। किसी किसी का यह मत है कि शारीरक वा सैनिक बल ही से एक जाति दूसरी जाति पर प्रभुत्व जमा सकती है। यह किसी अंश में ठीक हो सकता है, पर आजकल वाणिज्य की उन्नति से ही प्रभुत्व जमते देख पड़ता है। जिस जाति में इसका अभाव है, जहां इसमें कुशल लोग नहीं, वहां की अवस्था अत्यन्त ही शोचनीय है। अतएव यह निर्धारित होता है कि शिल्पनैपुण्य का ही होना परम आवश्यक है। इसलिये इसे प्राप्त करने का उपाय केवल तद्विषयक उपयुक्त और उत्तम शिक्षा ही है। आजकल प्रतिदिन नाना प्रकार के द्रव्यों का आविष्कार हो रहा है और नई नई वस्तुओं के बनाने के लिये नए नए सुन्दर यन्त्र बनते चले जाते हैं जिनसे, दिनोदिन चीजें अच्छी और सस्ती हो रही हैं। इसलिये जबतक शिल्पशिक्षा के साथ ही साथ उच्च वैज्ञानिक शिक्षा को न देंगे तब तक दूसरों के सम्मुख अपनी रक्षा कदापि न कर सकेंगे। इसके अतिरिक्त साधारणतः स्मृतिशक्ति आदि मस्तिष्कशक्तियों को परिमार्जित करना भी आवश्यक है। इसलिये साधारण शिक्षा का देना प्रयोजनीय होगा। यदि यह कहा जाय कि अमुक विषय की शिक्षा से कोई लाभ नहीं है तो यह ठीक नहीं, क्योंकि प्रथमतः तो प्रत्येक विषय मस्तिष्क शक्तियों को परिमार्जित करते हैं, दूसरे सम्भव है कि जिन शास्त्रों से अभी कुछ काम नहीं निकलता, उनसे आगे चलकर निकल सके। अतएव यह सिद्धान्त निकलता है कि जातीय उन्नति के लिये साधारण शिक्षा, वैज्ञानिक शिक्षा और शिल्प शिक्षा की आवश्यकता है।

यह बात सर्वसम्मत है कि प्रत्येक प्रकार की शिक्षा के लिये शिष्य, शिक्षक और शिक्षादान इन तीन वस्तुओं का बड़ा प्रयोजन है। इन तीनों में से यदि एक भी न हो तो शिक्षा का काम नहीं चल

सकेगा। इस बात को सब लोग मानते हैं कि भारतवासी सब प्रकार की शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं। कोई यह नहीं कहता कि अमुक विषय में यह शिक्षा नहीं पासकते। अतएव शिक्षाशक्ति के रहने पर उसे परिमार्जित करना और बढ़ाना कोई दुःसाध्य काम नहीं है। यह साधारण रीति से काम करने ही से हो सकता है। परन्तु शिक्षा तब तक कदापि अच्छी नहीं हो सकती जब तक अच्छे शिक्षक न मिलें। शिक्षकों में निम्नलिखित गुणों का होना नितान्त आवश्यक है। बिना इनके इन्हें शिक्षक कहना और उनसे उत्तम शिक्षा की आशा करना भूल है—चरित्रबल, श्रमशीलता, धैर्य्य, निज कर्तव्य में उत्साह, तथा उसके महत्व और गौरव में दृढ़ विश्वास। किन्तु इन सब बड़ी बड़ी बातों को छोड़कर शिक्षक में उस विषय का पूरा ज्ञान चाहिए जिसको वह शिक्षा देता हो, और उसे शिक्षा-प्रणाली का पूर्णवेत्ता होना चाहिए। कुछ लोगों का यह विचार है कि ज्ञान का रहना ही अलम् है, प्रणाली आती हो या नहीं। पर आजकल के शिक्षा-तत्वज्ञों ने इस बात को पूर्णतया स्पष्ट करके दिखा दिया है कि बिना उपयुक्त प्रणाली के जाने शिक्षा का कार्य सफलतापूर्वक करना नहीं आसकता। जैसे वैद्य, बिना रोगी का रोग समझे उसे औषधि नहीं दे सकता, वैसेही शिक्षक बिना अपने शिष्य के स्वभाव, उसकी प्रकृति और मस्तिष्क-शक्ति को जाने उसे पूरी पूरी शिक्षा नहीं दे सकता। इस लिये हमारे देश में पहिले इस बात का प्रवन्ध होना चाहिए कि हमारे भावी शिक्षकों को उपयुक्त शिक्षा हो। अभी थोड़े दिन हुए हैं कि भारतवर्ष के प्रत्येक प्रान्त में ऐसे विद्यालय स्थापित हुए हैं, पर उनकी अवस्था ऐसी हो रही है कि होने से उनका न होना ही अच्छा है। जिन्हें शुद्ध बोलने नहीं आता, जो स्वयं उन नियमों का पालन नहीं कर सकते, जिन्हें वे अपने शिष्यों को सिखाया चाहते हैं, जो स्वयं साधारण शिक्षा पाकर उच्च शिक्षा प्राप्त किए हुए लोगों को पढ़ाने का साहस करते हैं, ऐसे जिन विद्यालयों के अध्यापक हैं, उनसे कहां तक हमारे भावी शिक्षक पढ़कर अच्छे सांचे में ढाले जा सकेंगे, यह विज्ञ पाठकगण स्वयं अनुमान कर सकते हैं। इसलिये यह आवश्यक है कि या तो अच्छे विद्यालय स्थापित किए जांय या भावी शिक्षकगण विदेश भेजे जांय। ये दोनो कार्य बहु-व्यय-साध्य हैं।

अच्छे शिक्षकों के होने पर भी वे सामान्य वेतन पर नहीं मिल सकेंगे और यदि मिलेंगे भी तो ठहरेंगे नहीं। कुछ लोगों का यह विचार है कि शिक्षकों में स्वार्थत्याग का ध्यान रहना अच्छा है। यह ठीक है, पर वास्तव में ऐसे लोग कितने मिल सकते हैं? शिक्षक के लिये यह बात बड़ी आवश्यक है कि वह समाज में प्रतिष्ठा का पात्र रहे। यदि उसकी रहन सहन ऐसी न हो सको तो उसका प्रभाव शिष्यों पर कदापि अच्छा न पड़ सकेगा। उसको आय इतनी होनी चाहिए कि जीविका निर्वाह के लिये उसे दूसरे उपायों का अवलम्बन न करना पड़े। यदि उसे कम वेतन मिलेगा तो वह अवश्य ही कोई न कोई उपाय उपयुक्त आय का निकालेगा और उसके ऐसा करने से उस विद्यालय को उससे पूरा पूरा लाभ न पहुंच सकेगा। इसके अतिरिक्त उसे इतना समय मिलना चाहिए कि जिस विषय की वह शिक्षा देता हो उसकी नवीन पुस्तकों का निरन्तर अध्ययन करता रहे, ऐसे ऐसे पत्र देखता रहे जिनमें इन विषयों की चर्चा रहती हो। यदि उसे दो तीन विषयों को पढ़ना या प्रति सप्ताह २४ या ३० घण्टे काम करना होगा तो वह इन बातों के करने में कदापि समर्थ न होगा। सारांश यह कि शिक्षक के लिये चारो ओर धन ही धन की आवश्यकता देख पड़ती है। विना इसके उसका काम नहीं चल सकेगा और बिना अच्छा वेतन दिए और बिना उससे कम काम लिए कभी अच्छे अध्यापक नहीं मिलेंगे। कुछ लोग अवैतनिक कार्य की बड़ी प्रशंसा करते हैं, पर वास्तव में इससे बढ़कर कार्य को हानि पहुंचाने